I A S

GS World

P C S

Committed To Excellence

(12 नवंबर से 26 नवंबर तक)

आलेख सार

अंक – 22

संपादकीय

Analysis

360°

एक कदम, सफलता की ओर...

प्रिय अभ्यर्थियों!

जैसा कि आप जानते हैं कि जी०एस० वर्ल्ड प्रबंधन पिछले कुछ वर्षों से लगातार आपकी अध्ययन सामग्री की गुणवत्ता के संवर्धन हेतु सतत् प्रयासरत है, जिसके लिए दैनिक स्तर पर अंग्रेजी समाचार-पत्रों का सार एवं जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा सहायक सामग्री उपलब्ध करायी जाती है। साथ ही साप्ताहिक स्तर पर हिन्दी समाचार-पत्रों का सार उपलब्ध कराया जाता था, किंतु सिविल सेवा परीक्षा के बढ़ते स्तर एवं बदलते प्रश्नों को देखते हुए जी.एस. वर्ल्ड प्रबंधन ने साप्ताहिक समाचार-पत्रों के सार के स्थान पर अर्द्धमासिक स्तर पर संपादकीय **Analysis 360°** आरंभ किया है।

संपादकीय Analysis 360° में नया क्या है?

- इसमें महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विभिन्न समाचार-पत्रों में आए संपादकीय लेखों का सार उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन संपादकीय लेखों को समग्रता प्रदान करने के लिए इनसे जुड़ी सभी बेसिक अवधारणाओं को जी.एस. वर्ल्ड टीम द्वारा उपलब्ध कराया जा रहा है।
- इन मुद्दों से संबंधित 2013 से अब तक सिविल सेवा परीक्षा में पूछे गए प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा के प्रश्नों को भी नीचे दिया गया है, जिससे अभ्यर्थी उस मुद्दे से जुड़े प्रश्नों को समझ सकें।
- इन मुद्दों से संबंधित संभावित प्रश्नों को भी इन आलेखों के साथ दिया गया है, जिसका अभ्यास अभ्यर्थी स्वयं कर संस्थान में अपने उत्तर की जाँच भी करा सकते हैं।

GS World

जी.एस. वर्ल्ड प्रबंधन आपके उज्ज्वल एवं सफल भविष्य के लिए प्रतिबद्ध है...

नीरज सिंह
(प्रबंध निदेशक, जी.एस. वर्ल्ड)

Committed To Excellence

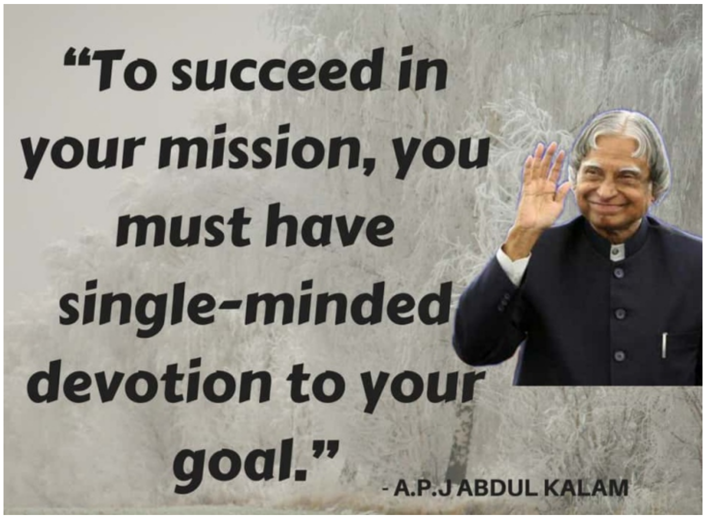

विषय-सूची

1. आधुनिक शिक्षा एवं बस्ते का बोझ 2

2. आधुनिक चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध कराने में पीछे भारत.. 10

3. भारतीय पितृसत्तात्मक समाज एवं हिंसा............................ 15

4. स्वतंत्र भारत में नेहरू की भूमिका....................................... 20

5. भारतीय राजनीति और राम मंदिर विवाद.......................... 26

6. भारतीय सुरक्षा व्यवस्था और आतंकवाद......................... 34

7. भारतीय राजनीति में कश्मीर का संकट 41

8. भारत-आसियान संबंध 48

9. करतारपुर साहिब और भारत-पाकिस्तान संबंध................. 53

GS World
Committed To Excellence

आधुनिक शिक्षा एवं बस्ते का बोझ

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (सामाजिक न्याय) से संबंधित है।

वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर के अध्ययन रिपोर्ट हमें आईना दिखा रहे हैं कि देखिए देश के अधिकांश बच्चे भाषा की बुनियादी दक्षता भी हासिल नहीं कर सके। न उन्हें पढ़ना-लिखना आता है और न ही गणित के सामान्य गुणा-भाग, घटाव ही आते हैं। न तो स्कूली शिक्षा की स्थिति बेहतर हो पाई और न ही स्कूली शिक्षा के स्तर में ही हम गुणात्मक सुधार कर पाए। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'जनसत्ता', 'हिन्दुस्तान' तथा 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित लेख का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

बेहतर समाज की शैक्षिक बुनियाद (जनसत्ता)

जीवन मूल्य जीवन को बहुत सार्थक व रचनात्मक बनाते हैं। शिक्षा में, स्कूल-कॉलेजों में इन मूल्यों का प्रवेश व्यापक स्तर पर हो सके तो यह मानवता के वर्तमान के लिए तो बड़ी उपलब्धि होगी ही, भविष्य के लिए और भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। निश्चय ही शिक्षा में जीवन मूल्यों का प्रवेश उपदेशात्मक उपायों से नहीं हो सकता है, इसे बहुत रचनात्मक व रुचिकर उपायों से करना होगा। यह शिक्षाविदों व अध्यापकों के लिए बड़ी चुनौती है।

हाल के वर्षों में शिक्षा में अनेक सुधार चर्चित रहे हैं। कभी किसी ने कहा कि एक स्तर तक परीक्षा हटा दो तो फिर किसी ने कहा कि परीक्षा वापस लाओ। कभी किसी ने कहा कि बस्ते का बोझ हल्का करो तो किसी ने कहा कि यह नया विषय और जोड़ दो। किसी ने कहा शारीरिक दंड पूरी तरह समाप्त करो तो किसी अन्य ने कहा कि अनुशासन का कोई तौर-तरीका तो अपनाओ। किसी का दावा है कि उसके स्कूल से पढ़े बच्चों के इतने अधिक अंक आए हैं, तो किसी का दावा है कि उसके स्कूल से जुड़े इतने प्रतिशत बच्चों ने डॉक्टरी या इंजीनियरिंग आदि में प्रवेश पा लिया है। इन सब चर्चाओं के बीच एक सवाल पीछे छूट जाता है कि किस तरह की शिक्षा व्यवस्था से ऐसे छात्र तैयार होते हैं जिनसे आगे चल कर एक बेहतर दुनिया बनाने की उम्मीद की जा सकती है? कौन से स्कूलों से ऐसे छात्र निकलते हैं जो भाईचारे, अमन, समता और न्याय को आगे बढ़ाएंगे? हमारे समाज को सबसे अधिक जरूरत तो ऐसी शिक्षा की है जो समग्र रूप से बेहतर समाज की नींव तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाए। अनेक स्तरों पर बेहद संवेदनशील दौर से गुजरते, बहुत गंभीर समस्याओं से जूझते हुए हमारे समाज को कई मायनों में अभूतपूर्व चुनौतियों का सामना करने के लिए अनुकूल जीवन मूल्य चाहिए और इसकी बुनियाद तैयार करने में सबसे अहम भूमिका शिक्षा संस्थानों व परिवार की ही हो सकती है।

इस दिशा में पहला कदम यह है कि ऐसे सबसे आवश्यक जीवन-मूल्यों के बारे में व्यापक सहमति बनाई जाए जो एक ओर समाज की वर्तमान समस्याओं को कम करने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और साथ ही भविष्य की इससे भी गंभीर चुनौतियों का सामना करने के लिए भी जरूरी हैं। यदि ऐसे जीवन मूल्यों पर व्यापक सहमति बन सकती है तो फिर शिक्षा में इनके समावेश का बहुत रचनात्मक, बहुत उपयोगी कार्य तेजी से आगे बढ़ सकता है।

एक बहुत सरल-सा जीवन मूल्य है- हम अपनी ओर से पूरा प्रयास करें कि अपने किसी वचन या कार्य से दूसरों को दुख न पहुंचाएं। कल्पना कीजिए एक छोटे से समुदाय की, जिसमें सभी इस जीवन मूल्य को स्वीकार करते हों। अनेकानेक समस्याएं जो दैनिक जीवन में परेशान करती रहती हैं

शिक्षा का लक्ष्य और हासिल (जनसत्ता)

आजाद भारत में हमने ढेरों शैक्षिक समितियां बनाई, राष्ट्रीय नीतियां बनाई, राष्ट्रीय शैक्षिक आयोग की स्थापनाएं कीं। लेकिन जो नहीं कर पाए वह यह है कि उन तमाम समितियों, आयोगों की सिफारिशों को अमल में नहीं ला पाए। यह वाकई त्रासद है कि ज्यादातर आयोगों और समितियों की रिपोर्टें और सिफारिशें रद्दी की टोकरी में डाल दी गई और इसकी वजह यही थी कि शिक्षा हमारी प्राथमिकता में कहीं नहीं है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बने और उस पर शिद्दत से काम हो, इसे लेकर किसी किस्म की कोताही की गुंजाइश नहीं है। इससे भी किसी को कोई गुरेज नहीं होगा कि वर्तमान चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में रद्दोबदल किया जाना चाहिए। जब पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी थी, तब की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक बुनावट और मांगे कुछ और थीं। जब हम 2018 में शिक्षा से उम्मीद और अपेक्षा की बात करते हैं, तब हमें पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परिवर्तन तो करने होंगे। गौरतलब हो कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) बनाने की घोषणा 2014-15 में ही की गई थी। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की मसविदा समिति की संस्तुतियां दो साल पहले सौंपी भी गई। लेकिन यह आश्चर्य है कि कैसे इसके पचास पन्ने मीडिया के माध्यम से शिक्षा समाज के हाथ लगे और आधी-अधूरी बहसें शुरू हो गई। अब हर साल इसकी समय सीमा को टाला जा रहा है। इस माह से उस माह, इस साल से अगले साल का खेल बतौर जारी है।

शिक्षा को और शिक्षा की बेहतरी के लिए नसीहतें और राय देने वाले लाखों हैं। लेकिन उसके प्रति प्रतिबद्धता की खासी कमी भी रेखांकित है। समस्या यह है कि कोई भी शिक्षा से चुहल करने से बाज नहीं आता। शिक्षा पर बात हो और कोई अपनी राय और नसीहत न दे, यह कैसे हो सकता है। शिक्षा में यह कमी है, शिक्षा में यह नहीं हो रहा है, बच्चे पढ़ना लिखना नहीं सीख रहे हैं, शिक्षक ठीक से अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाते आदि-आदि। शिक्षा पर इस प्रकार की और ऐसी ही अन्य नसीहतें मिलती हैं और शिक्षा के माथे पर ऐसी नसीहतों की बिंदी, जिसे जब मौका मिलता है, वह चेप देता है। बिंदी से एक कदम आगे बढ़ कर कहा जाए तो शिक्षा के माथे पर टिकुली लगाने वाली राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां भी बिलबलाई रहती हैं। सवाल यह उठ सकता है कि क्या इन कमियों में शिक्षा का कोई हाथ है? क्या शिक्षा अपनी प्रकृति के अनुसार ऐसी कुछ हरकतें कर सकती है? या फिर शिक्षा के कंधे पर सवार होकर कोई और अपने एजेंडा साधा करते हैं। संभावना इस बात की भी है कि शिक्षा पर होने वाले खर्च, उसके प्रबंधन, मानव श्रम और संसाधन की बेहतर उपयोगिता की दक्षता की कमी कहीं न कहीं शिक्षा और बच्चों को ही चुकानी पड़ती है। यदि आजादी के सत्तर सालों के बाद भी हमारी

वे इससे जड़-मूल से ही समाप्त हो जाएंगी। इस जीवन मूल्य के महत्त्व को पहले गहराई से आत्मसात करना होगा। फिर निरंतरता से उसे साधना होगा, तभी इस पर टिक सकेंगे। यही बात अन्य महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्यों पर भी लागू होती है। इन पर टिके रहने के लिए हम बेहद रचनात्मक ऐसे आत्ममंथन से जुड़ते चले जाते हैं जो हमारे अपने जीवन को बेहतर बनाता है और साथ में दुनिया को बेहतर बनाने से हमें जोड़ता है।

इसी तरह एक अन्य महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य है- किसी भी तरह के भेदभाव से ऊपर उठ कर सभी मनुष्यों की समानता को आत्मसात करना, हृदय से स्वीकार करना और इस आधार पर सभी की भलाई की सोच बनाना। जाति, धर्म, नस्ल, रंग आदि के आधार पर भेदभाव करने से समस्याएं बढ़ती हैं इसलिए इन्हें नकारते हुए हम सभी मनुष्यों की समानता व भलाई में विश्वास रखें। दुनिया के किसी भी भाग में रहने वाले किसी भी व्यक्ति के बारे में हमारी मुख्य सोच उसकी भलाई की ही हो।

ये दोनों जीवन-मूल्य पहली नजर में सरल-स्पष्ट हैं पर इनमें कुछ पेच भी हैं, कुछ जटिलताएं भी हैं। हम किसी को दुख न पहुंचाएं, पर जो अन्याय करता है, उसके विरुद्ध तो आवाज उठाना जरूरी है। वह अन्याय करता रहे तो हमें उसे जेल में पहुंचाने तक उसके विरुद्ध संघर्ष करना होगा, जिससे उसे और उसके परिवारजनों को दुख होगा। पर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में अन्याय करने वाले को दुख पहुंचाना उचित है, मान्य है। इसी तरह जब हम कहते हैं कि हम दुनिया के सब लोगों की भलाई चाहते हैं, लेकिन विश्व के मौजूदा हालात में कोई हम पर हमला कर दे तो हमें अपनी रक्षा के लिए तो मजबूत कदम उठाने ही होंगे। यह भी पूरी तरह मान्य है। दरअसल, बहुत व्यापक जीवन-मूल्य अपनाने पर ऐसे कुछ अपवादों की, कुछ विशेष स्थितियों की गुंजाइश बनी रहेगी और इस बारे में सहज समझ बन जाती है। व्यावहारिक स्तर पर ऐसे कुछ अपवाद स्पष्ट हो जाते हैं। इन अपवादों का अर्थ यह नहीं है कि इतने महत्त्वपूर्ण और कल्याणकारी जीवन मूल्यों को हम उपेक्षित कर दें।

इसी शृंखला में एक अन्य महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य यह है कि न केवल लैंगिक भेदभाव को विभिन्न स्तरों पर समाप्त किया जाए, बल्कि लैंगिक संबंधों को आधिपत्य, सत्तात्मकता, भोगवाद से मुक्त कर इन्हें परस्पर सम्मान, प्रेम, सहमति, सहजता व मर्यादित खुलेपन की ओर ले जाया जाए। अनावश्यक व बोझिल बंधनों को तोड़ने के साथ ही जरूरी मर्यादाओं को भी ध्यान में रखा जाए या मर्यादाओं को नए सिरे से परिभाषित किया जाए, लेकिन उन्हें उपेक्षित न किया जाए।

इसी तरह जीवन के किसी भी क्षेत्र में ऐसा न हो कि आधुनिकता के नाम पर समाज के लिए उपयोगी रही मर्यादाओं को अंधाधुंध त्याग दिया जाए। सार्थक परंपराओं व सार्थक बदलाव में एक समन्वय बने। अंधविश्वासों व दकियानूसीपन को छोड़ा जाए। दूसरी ओर, शराब व अन्य तरह के नशों, अत्यधिक भोग-विलास के जीवन, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, जुए आदि बुराइयों के विरुद्ध जो परंपरागत मान्यताएं हैं, वे बनी रहें। ईमानदारी, मेहनत, सादगी में संतोष की हमारी जो परंपरागत मान्यताएं हैं, उन्हें आधुनिक समय की जरूरतों से जोड़कर और मजबूत करना चाहिए।

मानव संबंधों में एक बहुत बड़ी कमी है कि ये प्रायः अपने विचार, हित, स्वार्थ स्थापित करने पर टिके होते हैं। आधिपत्य के संबंध बहुत समस्याएं लाते हैं क्योंकि दूसरे पक्ष के विचारों व जरूरतों को महत्त्व नहीं दिया जाता है। निरंतर टकराव, दुख, धोखे, झगड़े की संभावना बनी रहती है। इसलिए मानव संबंधों का आधार आधिपत्य के स्थान पर सहयोग का होना चाहिए और इसके लिए सतत प्रयास की जरूरत है। इसी तरह अधिक व्यापक स्तर पर प्रकृति व अन्य जीवों के साथ संबंधों से भी आधिपत्य की प्रवृत्ति को हटा कर सह-अस्तित्व, सहयोग, समन्वय की सोच को विकसित करना चाहिए।

एक अति महत्त्वपूर्ण जीवन मूल्य यह है कि यथासंभव अन्याय के विरुद्ध न्याय का साथ अवश्य देना चाहिए। इस जीवन-मूल्य का व्यापक

शिक्षा विकास और प्रगति की राह पर नहीं आ पाई, तो इसके लिए हम ही दोषी हैं। आजाद भारत में हमने ढेरों शैक्षिक समितियां बनाई, राष्ट्रीय नीतियां बनाई, राष्ट्रीय शैक्षिक आयोग की स्थापनाएं कीं। लेकिन जो नहीं कर पाए, वह यह है कि उन तमाम समितियों, आयोगों की सिफारिशों को अमल में नहीं ला पाए। यह वाकई त्रासद है कि ज्यादातर आयोगों और समितियों की रिपोर्टें और सिफारिशें रद्दी की टोकरी में डाल दी गईं। और इसकी वजह यही थी कि शिक्षा हमारी प्राथमिकता में कहीं नहीं है।

शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हमने कई समझौते किए। 1990, 2000, 2015 आदि में घोषणाएं कीं कि आने वाले वर्षों में हम अपने देश में सभी बच्चों को बुनियादी शिक्षा मुहैया करा देंगे। ऐसी घोषणाओं की लंबी कतार है जिनमें हम लगातार पिछड़ते ही जा रहे हैं। सन 1990 से लेकर 2000, 2015 तक वक्त में हमें अगली तारीख मुकर्रर करने के पहले अपनी कार्यप्रणाली पर मंथन करना चाहिए था। हमें हमारी रणनीतियों, नीतियों और उन पर अमल की गति की पहचान कर उन अड़चनों को दूर किया जाना था, जिनकी वजह से पिछले सालों में हम शिक्षा के उद्देश्यों और घोषणाओं को पूरा नहीं कर पाए। अपनी असफलताओं से हमें कुछ सीखना भी था। उस ऐतिहासिक सीख से आगामी योजनाओं और नीतियों को अमल में लाया जाना था। लेकिन अफसोसनाक तल्ख हकीकत यही है कि घोषणाएं करने और मंचों पर तालियां बटोरने के अलावा हमने ठोस काम कुछ नहीं किया।

भारत के शिक्षा जगत की त्रासदी यह है कि हमने अपने विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, स्कूलों आदि शैक्षिक संस्थानों को अपनी मौत मरने के लिए छोड़ दिया है। यह सिलसिला 1989 के आसपास शुरू हुआ था, जब हमने शिक्षा और शिक्षण संस्थानों को बाजार के हवाले करने का क्रांतिकारी कदम उठाया था। यही वह साल था जब शिक्षा के द्वार वैश्विक बाजार के लिए खोले गए थे। तब से शिक्षण संस्थानों को स्वायत्त व वित्त पोषित संस्थान बनाने की शुरुआत हुई। तमाम सरकारी शैक्षिक संस्थानों को अपने खर्च स्वयं निकालने के लिए प्रेरित और मजबूर किया गया और देखते ही देखते विश्वविद्यालयों में प्रबंधन और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के विभाग खुलने लगे। मानविकी विभागों में सीटें खाली होने लगीं। इस प्रबंधन का मकसद सिर्फ और सिर्फ मानवीय श्रम और संसाधनों को प्रबंधित नहीं करना था, बल्कि शिक्षा में मिलने वाले आर्थिक सहयोग और आवंटित बजट को कैसे समझ और विवेक के साथ योजना बना कर खर्च किया जाना है, इसका भी प्रबंधन हमें सीखना था। लेकिन दुर्भाग्य कि इसमें हम पिछड़ते चले गए। हालांकि, कोठारी आयोग ने 1964-66 में ही सकल घरेलू उत्पाद का छह फीसद शिक्षा पर देने की वकालत की थी, जो आज भी शिक्षा पर दी जा रही तय राशि से काफी कम है।

न तो नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति अभी तक आ सकी और न स्कूलों से बाहर खड़े करोड़ों बच्चे स्कूली तालीम हासिल कर पाए। हमने सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय शिक्षा अभियान शुरू किए, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 लागू किया। लेकिन इनसे आखिरकार हासिल क्या हुआ? न तो स्कूली शिक्षा की स्थिति बेहतर हो पाई और न ही स्कूली शिक्षा के स्तर में ही हम गुणात्मक सुधार कर पाए। वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर के अध्ययन रिपोर्ट हमें आईना दिखा रहे हैं कि देखिए देश के अधिकांश बच्चे भाषा की बुनियादी दक्षता भी हासिल नहीं कर सके। न उन्हें पढ़ना-लिखना आता है और न ही गणित के सामान्य गुणा-भाग, घटाव ही आते हैं। न तो नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति अभी तक आ सकी और न स्कूलों से बाहर खड़े करोड़ों बच्चे स्कूली तालीम हासिल कर पाए।

हमने सहस्राब्दी विकास लक्ष्य 2000 में तय किया था कि हम 2015 तक शिक्षा के मूलभूत मसलों को दूर कर अपने बच्चों को बुनियादी शिक्षा मुहैया करा देंगे। लेकिन यह 2015 भी हमारे हाथ से निकल गया। हमने 2016 में शिक्षा को सतत विकास लक्ष्य में शामिल किया कि 2030 तक हम अपने बच्चों को बुनियादी शिक्षा किसी भी सूरत में हासिल करा देंगे।

स्तर पर पालन होगा, तो दुनिया अहिंसा की राह पर ही व्यापक समानता, न्याय और सबकी जरूरतों को गरिमामय ढंग से पूरा करने की ओर बढ़ेगी। सभी स्तरों पर अहिंसा की राह अपनाने व हिंसा की सोच को त्यागने के साथ-साथ दैनिक जीवन में क्रोध और बदला लेने की भावना को न्यूनतम करना भी एक महत्त्वपूर्ण जीवन मूल्य है। इसी तरह समय की बहुत बड़ी मांग है पर्यावरण की रक्षा के प्रति गहरी प्रतिबद्धता, इसके लिए सतत प्रयास और इसके अनुकूल सादगी में संतोष प्राप्त करना, ऐसी जीवन-शैली जो हर तरह के अनावश्यक उपभोग, भोग-विलास और विशेषकर नशे से मुक्त हो। यह प्रयास हमें अनेक तरह के ऐसे आकर्षणों से मुक्त रखेगा, जो वास्तव में अनावश्क बंधन हैं व कई तरह की आफत के कारण भी हैं। पर्यावरण रक्षा से जुड़ते रहने से जीवन को बहुत रचनात्मकता भी मिलती है।

वास्तव में ये सभी जीवन मूल्य जीवन को बहुत सार्थक व रचनात्मक बनाते हैं। शिक्षा में, स्कूल-कॉलेजों में इन मूल्यों का प्रवेश व्यापक स्तर पर हो सके तो यह मानवता के वर्तमान के लिए तो बड़ी उपलब्धि होगी ही, भविष्य के लिए यह और भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। निश्चय ही शिक्षा में इन जीवन मूल्यों का प्रवेश उपदेशात्मक उपायों से नहीं हो सकता है, इसे बहुत रचनात्मक व रुचिकर उपायों से करना होगा। यह शिक्षाविदों व अध्यापकों के लिए बड़ी चुनौती है। इसमें परिवार और अभिभावक स्तर पर भी महत्त्वपूर्ण योगदान चाहिए। इस दिशा में पहला कदम यह है कि सबसे सार्थक व आवश्यक जीवन-मूल्यों पर एक व्यापक सहमति बनाएं और फिर अनेक रचनात्मक उपायों से इनके शिक्षा में समावेश की ओर आगे बढ़ें।

बचपन का बोझ कम करने के लिए (हिन्दुस्तान)

स्कूली बच्चों और अभिभावकों के लिए यह अच्छी खबर है। अब पहली से दसवीं कक्षा तक के बच्चों के लिए स्कूली बैग का वजन निर्धारित कर दिया गया है। मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा सभी राज्य सरकारों और केंद्रशासित क्षेत्रों को निर्देश दिए गए हैं कि अब स्कूली बच्चों के बैग का वजन वही होगा, जो कि मंत्रालय ने निर्धारित किया है। अब पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के बैग का वजन 1.5 किलोग्राम से लेकर दसवीं कक्षा के लिए पांच किलोग्राम तक तय किया गया है। साथ ही होमवर्क के लिए भी निर्देश जारी कर दिए गए हैं। पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को होमवर्क देने पर रोक लगा दी गई है। उन्हें कक्षा में सिर्फ मातृभाषा और गणित पढ़ाई जाएगी। तीसरी से पांचवीं कक्षा के बच्चों को भी निर्धारित तीन विषय एनसीईआरटी की किताबों से ही पढ़ाए जाएंगे।

स्कूली बच्चों के कंधों पर लदे बस्ते के बोझ का मामला नया नहीं, तीन दशक पुराना है। 1980 में प्रसिद्ध लेखक आरके नारायण को जब राज्यसभा के लिए मनोनीत किया गया था, तो उन्होंने सदन में अपने एकमात्र भाषण में स्कूली बच्चों पर पढ़ाई और बस्ते के बोझ व स्कूलों में उन्हें रट्टू तोता बनाने की कोशिशों का मुद्दा बड़े जोर से उठाया। इसके बाद मानव संसाधन मंत्रालय ने प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक छह सदस्यीय कमेटी का गठन किया था, जिसे स्कूली शिक्षा में सुधार का एजेंडा निर्धारित करने का काम दिया गया। आरके नारायण ने मालगुडी डेज उपन्यास में अल्बर्ट मिशन स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की कहानी के माध्यम से 20वीं सदी के हिन्दुस्तान में स्कूली शिक्षा और अभिभावकों के तौर-तरीकों को स्वामी और उसके दोस्तों की नजरों से दिखाया था, जिन्हें स्कूली शिक्षा के कठोर सांचे में फिट होने के लिए मजबूर किया जाता है।

यशपाल कमेटी ने बच्चों पर बस्ते के बोझ की जांच के दौरान समूची स्कूली शिक्षा पर एक आलोचनात्मक ढंग से नजर डाली थी। कमेटी का कहना था कि बस्ते के बोझ की समस्या के कई विचारणीय पहलू हैं। नर्सरी स्कूलों में अब बच्चों को दो-ढाई साल की आयु में भर्ती कर दिया जाता है। बच्चों की दिनचर्या एक मशीनी ढांचे में बदल रही है। सुबह बस्ता लटकाकर स्कूल जाना, दोपहर में घर लौटकर होमवर्क करना, फिर इसमें हमने यह भी कहा कि कोई भी बच्चा जाति, वर्ण, वर्ग आदि के आधार पर स्कूल से बाहर नहीं रहेगा। लेकिन हम अपनी ही घोषणाओं को धता बताते रहे हैं। सरकारी और गैर सरकारी रिपोर्टें बताती हैं कि अभी भी तीन करोड़ से भी ज्यादा बच्चे स्कूल से बाहर हैं। हमारी गति और दिशा तय करेगी कि हम सतत विकास लक्ष्य को क्या इस बार हासिल करने वाले हैं या फिर इस बार दुबारा इस तय समय सीमा को आगे खिसकाने वाले हैं।

बच्चों की ट्यूशन अब कोई अपवाद नहीं, नियम है (हिन्दुस्तान)

कैंब्रिज इंटरनेशनल ग्लोबल एजुकेशन सेंसस ने अपनी एक रिपोर्ट में बताया है कि भारत में 74 प्रतिशत बच्चे स्कूल के बाद गणित का ट्यूशन लेते हैं। ट्यूशन लेने वाले बच्चों का यह प्रतिशत दुनिया भर में सबसे ज्यादा है। 72 प्रतिशत बच्चे स्कूल की अन्य गतिविधियों में भी शामिल हैं। लेकिन बच्चों की भागीदारी खेलों में कम है। इस अध्ययन में भारत के अलावा अमेरिका, मलेशिया, अर्जेंटीना, दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान समेत दस देशों को शामिल किया गया था। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि अपने देश में 66 प्रतिशत माता-पिता भी बच्चों की स्कूल में होने वाली गतिविधियों के बारे में लगातार पूछते रहते हैं। इनमें से पचास प्रतिशत स्कूल में होने वाले बहुत से आयोजनों में भी भाग लेते हैं। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि भारतीय माता-पिता अपने बच्चों की पढ़ाई में अन्य बहुत से समाज के मुकाबले कहीं अधिक दिलचस्पी लेते हैं।

इस सर्वे में निजी स्कूलों के साथ-साथ सीबीएसई तथा राज्यों के शिक्षा बोर्ड्स से जुड़े बहुत से स्कूलों को भी सम्मिलित किया गया था। रिपोर्ट के अनुसार, बच्चों की पहली पसंद अब भी डॉक्टर या इंजीनियर बनना है। इसी रिपोर्ट में बताया गया है कि 36.7 प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं, जो सप्ताह में सिर्फ एक घंटा ही खेलते हैं। सिर्फ तीन प्रतिशत बच्चे ऐसे पाए गए, जो सप्ताह में छह घंटे से अधिक खेलते हैं, और 26.4 प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं, जो बिल्कुल नहीं खेलते। ये नतीजे भारत में 2,400 अध्यापकों और 4,800 बच्चों से बातचीत के आधार पर निकाले गए हैं।

रिपोर्ट में बच्चों के कम खेलने के जिक्र से उनके लिए काम करने वाले संगठनों, डॉक्टरों और उन विशेषज्ञों की बातें भी प्रमाणित होती हैं कि बच्चे शारीरिक गतिविधि नहीं करते, वे टीवी, मोबाइल या इंटरनेट में व्यस्त रहते हैं, भाग-दौड़ के खेल कम खेलते हैं, इसलिए उनका मोटापा बढ़ता जा रहा है। वे तरह-तरह की गंभीर बीमारियों का शिकार भी हो रहे हैं। न खेलने और पौष्टिक खाने के मुकाबले जंक फूड का अधिक से अधिक प्रयोग भी बच्चों के लिए बेहद हानिकारक है। स्वादिष्ट होने के नाम पर बच्चों के बीच इस तरह की खाद्य सामग्री का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। हालांकि, बहुत से स्कूलों में इस तरह के खाद्य पदार्थों के बेचने पर रोक लगाने की खबरें भी पिछले दिनों आई थीं। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के बारे में भी अक्सर ऐसी ही चिंताएं प्रकट की जाती हैं कि उन पर अच्छे नंबर लाने का दबाव अध्यापकों, माता-पिता और दोस्तों की देखादेखी भी इतना अधिक रहता है कि खेलने-कूदने को समय की बर्बादी मानने लगते हैं।

इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि छात्र-छात्राएं अच्छा करें, इसके लिए अध्यापक भी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। वे चाहते हैं कि उनके विद्यार्थियों के परीक्षा में नंबर अच्छे आएं। बच्चों के अच्छे नंबर अध्यापक के अच्छे होने का भी प्रमाण माना जाता है। छात्र कक्षा में अच्छा करें, दुनिया भर के अध्यापक इस कारण से बहुत दबाव में रहते हैं, मगर भारतीय अध्यापकों में मात्र 33 प्रतिशत इस दबाव को महसूस करते हैं। यह भी सच्चाई है कि अगर स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद

ट्यूशन पढ़ना और शाम को घर पर टीवी देखना, क्योंकि खेल-कूद के लिए खुली जगह अब कम हो रही है।

यशपाल कमेटी ने पाया कि बच्चों पर पढ़ाई और इम्तिहान का शारीरिक व मानसिक बोझ इतना बढ़ गया है कि वे पढ़ाई से ऊबने लगे हैं। कमेटी ने इस उबाऊ, यांत्रिक, आनंद रहित शिक्षा के कारणों और उसे 'सानंद-शिक्षा' बनाने के उपायों पर भी कई रचनात्मक और प्रभावशाली सुझाव दिए थे। यशपाल कमेटी ने पाया था कि स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम को तैयार करने में जिन विशेषज्ञों की सेवाएं ली जाती हैं, वे बच्चों के सीखने के तौर-तरीकों से वाकिफ नहीं होते। अक्सर ये विशेषज्ञ बच्चों को ज्यादा से ज्यादा सूचनाएं देना चाहते हैं। वे सूचनाओं को ही ज्ञान समझते हैं। यशपाल कमेटी ने दिल्ली या बड़े शहरों में विशेषज्ञों द्वारा बैठकर बनाए पाठ्यक्रमों की भी आलोचना की, जिसको बनाने में देश के दूर-दराज के इलाकों के गुणी शिक्षकों की कोई राय नहीं ली जाती है। कमेटी ने समाज में, खासतौर पर शहरों में शिक्षा को लेकर पैदा हो रही एक भ्रांत धारणा पर भी चिंता प्रकट की। उसका कहना था कि अभिभावकों का यह सोचना कि उनके बच्चे हर परीक्षा में टॉप करें और आगे जाकर डॉक्टर-इंजीनियर बनें, एक अंधी दौड़ को जन्म दे रहा है। कमेटी ने देश के स्कूलों में समुचित आधारभूत सुविधाओं और अच्छे शिक्षकों की कमी पर भी गंभीर चिंता व्यक्त की थी।

मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों को स्कूली बस्तों के वजन को निर्धारित करने का निर्देश एक सही कदम है, हालांकि इस कदम को उठाने में 25 वर्ष लगे। इस बीच न जाने कितने करोड़ बच्चे और किशोर, बस्तों के बोझ और आनंद रहित स्कूली शिक्षा से त्रस्त होते रहे और रट्टू तोते बनते रहे। बच्चों से उनका बचपन, उनकी मौज-मस्ती, उत्सुकता, कौतूहल और मासूमियत छीन लीजिए, तो वे इंसान नहीं, रोबोट बन जाते हैं। लेकिन स्कूली बच्चों और उनके बचपन की चिंता करते समय ध्यान सिर्फ बच्चों के स्कूली बस्ते के वजन तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। यशपाल कमेटी की जिन प्रमुख सिफारिशों को लेकर 25 वर्ष पूर्व एक राष्ट्रीय सहमति बनी थी, वे थीं- स्कूली बच्चों के पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तक निर्माण में शिक्षकों की भागीदारी, प्री-नर्सरी में प्रवेश की न्यूनतम आयु सीमा का निर्धारण, प्री-नर्सरी में प्रवेश के लिए बच्चों के इंटरव्यू को खत्म करना, प्री-नर्सरी में पाठ्य पुस्तकों के प्रयोग पर पाबंदी, प्राइमरी स्कूलों में होमवर्क व प्रोजेक्ट वर्क पर पाबंदी, प्राइमरी स्कूलों में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात 1:40 रखना और इन स्कूलों में दृश्य-श्रव्य उपकरणों का उपयोग। लेकिन कमेटी की ज्यादातर सिफारिशें ठंडे बस्ते में पड़ी रहीं, क्योंकि सरकारों के लिए स्कूली शिक्षा का मात्रात्मक विस्तार ही एजेंडा रहा है। स्कूली शिक्षा के नतीजों और उसकी क्वालिटी पर ध्यान नहीं दिया गया है। गांवों, कस्बों और छोटे शहरों में गरीब परिवार भी प्राइवेट स्कूलों में दाखिले के लिए सरकारी स्कूलों की मुफ्त पढ़ाई को छोड़ना पसंद कर रहे हैं। ज्यादातर स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं और कुशल शिक्षकों का अभाव है। एक अनुमान के अनुसार, देश में अभी 90 लाख स्कूली शिक्षकों की कमी है। इसमें आईटी तकनीक भी बड़ी भूमिका निभा सकती है। यह तय है कि पारंपरिक तौर-तरीके अब नहीं चलेंगे। उनकी जगह बेहतर योजनाओं और आईटी के उपयोग से इनोवेटिव तरीके अपनाने होंगे। स्कूली बच्चों के बस्ते का बोझ कम करना एक सराहनीय कदम होगा, किंतु इससे किसी क्रांतिकारी सुधार की उम्मीद मत करिए।

15 जुलाई, 1993 को अपनी रिपोर्ट पेश करते समय प्रोफेसर यशपाल ने कहा था, 'स्कूली बच्चों के लिए ज्यादा खतरनाक बोझ है पढ़ाई को ठीक से न समझ पाना। जो प्राइमरी स्कूलों से पढ़ाई छोड़ देते हैं, उनमें ज्यादातर वे बच्चे हैं, जो रट्टू तोते बनने को तैयार नहीं हैं। वे उन बच्चों से बेहतर हैं, जो सिर्फ रट्टा मार परीक्षा पास कर जाते हैं।' इस कथन को आज भी याद रखना जरूरी है।

बच्चों के अच्छे नंबर न आएं, तो उन्हें अपने मनपसंद कोर्स या कॉलेज में दाखिला नहीं मिलता। एक-एक नंबर कम होने के कारण बहुत से बच्चे पीछे रह जाते हैं। जैसा कि इस रिपोर्ट में अध्यापकों ने माना कि बच्चों के अच्छे नंबर ही उनके अच्छे अध्यापक होने का प्रमाण हैं। तकरीबन यही मान्यता बच्चों के अभिभावकों की होती है। इसीलिए अंत में अध्यापक से पूछा जाता है कि बच्चे के इतने कम नंबर कैसे आए? क्या आप लोग उन पर ध्यान नहीं देते? और अब, जब इतने कम नंबर आए हैं इसे कहां एडमिशन मिलेगा? जरूर पढ़ने के मुकाबले खेलने में ज्यादा वक्त गंवाया होगा। जब परिवार के बड़े लोगों और अभिभावकों से ही बच्चे ये बातें सुनें कि पढ़ने के मुकाबले खेलने में ज्यादा वक्त गंवाया हो, तो भला वे क्यों खेलें? एक सवाल यह भी है कि जब दुनिया भर में सबसे अधिक ध्यान हमारे अध्यापक बच्चों की पढ़ाई पर देते हैं, तो उन्हें अलग से ट्यूशन पढ़ने की जरूरत क्यों पड़ती है?

ट्यूशन ही पढ़ना है तो स्कूल की क्या जरूरत?

(नवभारत टाइम्स)

पिछले दिनों फिर एक सर्वे आया, जिसमें कहा गया है कि भारत के बच्चे दुनिया में सबसे ज्यादा ट्यूशन पढ़ते हैं। खास तौर से गणित के विषय के लिए। उस सर्वे में कहा गया है कि भारत में 74 प्रतिशत बच्चे ट्यूशन पढ़ते हैं। सच्चाई यह है कि हमारे देश में यह कल्पना ही असंभव है कि कोई ट्यूशन के बगैर भी पढ़ सकता है। बच्चा भले ही तैयार हो जाए, पर मां-बाप की ही नींद हराम हो जाएगी। उन्हें यह बात पचेगी ही नहीं कि कोई बगैर ट्यूशन के कैसे पास होगा।

इधर कुछ समय से देश के कई शिक्षाविद ट्यूशन की आलोचना करने लगे हैं। पहली बार ट्यूशन के खिलाफ माहौल बन रहा है। यह विमर्श शुरू हुआ है कि ट्यूशन हमारी शिक्षा पद्धति की असफलता का प्रतीक है। वैसे यह तय करना मुश्किल है कि स्कूली शिक्षा सचमुच स्तरहीन है या प्राइवेट ट्यूशन लॉबी के प्रचार की वजह से लोग मनोवैज्ञानिक दबाव में आकर ऐसा सोचने लगे हैं। देश के नामी-गिरामी स्कूलों के बच्चे भी ट्यूशन पढ़ते हैं। आखिर क्यों? आखिर स्कूलों की जरूरत ही क्या है। बच्चे अलग-अलग ट्यूशन पढ़ें और फिर एक कॉमन परीक्षा में बैठ जाएं। पास हुए तो डिग्री मिल जाएगी। स्कूल और ट्यूशन, दोनों पढ़ने का अर्थ क्या है। बेवजह पैसा और समय दोनों बर्बाद होता है।

जरा सोचिए, हमारे बच्चों का जीवन कैसा है। सुबह-सुबह स्कूल के लिए भागिए, फिर घर आकर ट्यूशन के लिए भागिए। मशीन बनकर रह गए हैं वे। जब यही बात मैंने अपने एक मित्र से कही, तो वे रहस्यमय ढंग से मुस्कराए। मेरे मित्र अपने जीवन की हाफ सेंचुरी लगा चुके हैं। उन्होंने कहा, 'आज के लिए ट्यूशन भले ही बुरी चीज हो, पर हमारे जमाने के लिए यह बड़ी अच्छी चीज थी।' मैंने पूछा,'कैसे?' उन्होंने हंसते हुए कहा, 'अरे भाई हमारे जमाने में को-एजुकेशन तो था नहीं। हमलोग लड़कियों को दूर से ही ताड़ते रहते थे। लेकिन मैट्रिक में जाते ही ट्यूशन भेजा गया। मजा आ गया यार। ट्यूशन वाले मास्टर साहब लड़का-लड़की दोनों को साथ पढ़ाते थे। पहली बार ट्यूशन में ही लड़कियों के करीब बैठने का सुख मिला। स्कूल से घर आते ही मैं सज-धजकर ट्यूशन के लिए तैयार हो जाता था। जीवन में पहली बार सेंट छिड़कना शुरू किया। ट्यूशन के कारण ही लड़कियों से बतियाने का अवसर मिला। दरअसल, ट्यूशन तो सोशल रिवोल्यूशन था भाई। सिर्फ पढ़ने वालों के लिए नहीं, पढ़ाने वालों के लिए भी। हमारे एक मामाजी तो उसी लड़की के साथ भाग गए, जिसे ट्यूशन पढ़ाते थे।' यह कहकर मेरे मित्र ने लंबी सांस ली। मैंने पूछा, 'तुम्हारा क्या हुआ?' उसने कहा, 'मत पूछो, मैं तो ट्यूशन के कारण ही फेल हो गया।'

राहत की पढ़ाई (जनसत्ता)

अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से जारी ताजा दिशा निर्देश पर अगर ठीक से अमल हुआ, तो आने वाले समय में स्कूली बच्चों को भारी बस्ते के बोझ से बड़ी राहत मिलेगी। मंत्रालय के स्कूली शिक्षा व साक्षरता विभाग की ओर से राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को जारी परिपत्र के मुताबिक, पहली और दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों को अब होमवर्क से मुक्ति मिल जाएगी।

शिक्षा व्यवस्था पर किए गए ज्यादातर अध्ययन यह बताते हैं कि स्कूली बच्चों में पढ़ाई-लिखाई के प्रति अरुचि या उसे बोझ की तरह लेने का एक बड़ा कारण उनके कंधों पर जरूरत से ज्यादा भारी बस्ते का टंगा होना है। इसलिए अनेक शिक्षाविद् लंबे समय से यह सुझाव देते रहे हैं कि स्कूली बच्चों पर किताबों के बोझ को कम किया जाना चाहिए। सरकारों की ओर से कई बार इस दिशा में कदम उठाने की बातें कही गईं। यों दिल्ली में पहली और दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों को होमवर्क नहीं दिया जाता है। लेकिन देश भर में बस्ते के बोझ को कम करने के लिए अब तक कोई ठोस योजना सामने नहीं आ सकी है। अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से जारी ताजा दिशा निर्देश पर अगर ठीक से अमल हुआ तो आने वाले समय में स्कूली बच्चों को भारी बस्ते के बोझ से बड़ी राहत मिलेगी। मंत्रालय के स्कूली शिक्षा व साक्षरता विभाग की ओर से राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को जारी परिपत्र के मुताबिक, पहली और दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों को अब होमवर्क से मुक्ति मिल जाएगी। इसके अलावा, किताब-कॉपियों के उनके बस्ते का वजन अधिकतम डेढ़ किलो होगा। इसी तरह तीसरी से दसवीं कक्षा तक के बच्चों के बस्ते का अधिकतम वजन भी तय कर दिया गया है।

दरअसल, इस तरह की पहलकदमी की जरूरत काफी पहले से महसूस की जा रही थी। निश्चित रूप से स्कूली बच्चों के कंधे पर यह बोझ कक्षा की किताबों और कॉपियों का होता है, लेकिन उसके भार तले उनका शरीर और मन-मस्तिष्क भी दबा होता है। यही वजह है कि बहुत सारे बच्चे स्कूली शिक्षा को अपनी जीवन-चर्या का सहज हिस्सा न मान कर, उसे एक जबरन निबाहने वाली ड्यूटी के तौर पर देखते हैं। खासतौर पर शुरुआती कक्षाओं में दाखिला लेने वाले बच्चों की उम्र कई बार काफी कम होती है और उन्हें भी न केवल स्कूलों में अपनी कक्षाएं पूरी करनी पड़ती हैं, बल्कि आमतौर पर होमवर्क के रूप में घर में पढ़ाई पर समय देना पड़ता है। जिस उम्र में खेलना और अपने मन से कुछ नया करने-सीखने की कोशिश बच्चों की सामान्य इच्छा होती है, उसमें उन्हें किताब-कॉपियों का भारी थैला उठाना पड़ता है। इसका सीधा असर उनकी सेहत और रचनात्मकता पर पड़ता है। बिना दिलचस्पी के की जाने वाली पढ़ाई का ही नतीजा यह होता है कि ज्यादातर बच्चों को किताबों में से कोई नई चीज सीखने के लिए अपेक्षया ज्यादा वक्त लगाना पड़ता है।

दरअसल, बोझ की तरह पढ़ने का सीधा असर सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है। पिछले कुछ सालों से लगातार ऐसी रिपोर्ट सामने आती रही हैं, जिनके मुताबिक पांचवीं या छठी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे दूसरी या तीसरी कक्षा की किताबें भी ठीक से नहीं पढ़ पाते हैं। इसकी मुख्य वजह यही है कि बच्चों के भीतर सीखने की सहज प्रक्रिया पर किताबों से लेकर शिक्षण पद्धति का बोझ भारी पड़ता है। जबकि बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रख कर तैयार किए गए विषय और पाठ्यक्रम ही कोमल मन-मस्तिष्क वाले बच्चों में सीखने के प्रति रुचि पैदा कर सकते हैं और इसके बाद पढ़ाई-लिखाई को लेकर वे सहज हो सकते हैं। बिना जरूरत की किताबों से भरे थैले और गैरजरूरी विषयों में बच्चों को उलझाना और उनके खेलने या अपनी तरह से कुछ करने की इच्छा को बाधित करके बेहतर नतीजे हासिल नहीं किए जा सकते। इसलिए जरूरत इस बात की है कि बच्चों के लिए शिक्षा को बोझ नहीं, दिलचस्पी और सहजता का विषय बनाया जाए।

क्या हल्का होगा बस्ता (हिन्दुस्तान)

यह दुर्भाग्य ही है कि 'बस्ते का बोझ' के जिस जरूरी मसले पर प्रोफेसर यशपाल समिति ने 1992 में ही अपनी सिफारिशें सौंप दी थीं, उन सिफारिशों पर तो आज तक कोई कारगर पहल हुई नहीं, और हम हैं कि नए-नए दिशा निर्देश जारी होते देख हर बार इस उम्मीद से ही खुश हो जाते हैं कि शायद अब कुछ असर होगा। अब जब मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने पहली से दसवीं कक्षा तक के बच्चों के लिए स्कूली बस्ते का अधिकतम वजन तय कर दिया है, तो एक बार फिर मानकर खुश हो लेना चाहिए कि देर से ही सही, यह कदम मासूमों की पीठ का बोझ ही नहीं, उनके मन पर पड़ता बोझ भी थामने में सहायक होगा। मंत्रालय ने पहली से दूसरी क्लास तक बस्ते का वजन 1.5 किलोग्राम, दसवीं कक्षा के लिए अधिकतम पांच किलो तय कर दिया है। पहली और दूसरी के बच्चों के लिए किसी तरह के होमवर्क पर भी पाबंदी लगा दी है।

बस्ते का बोझ कोई अनायास पैदा हुई चीज नहीं। यह उन निजी स्कूलों की शोशेबाजी से निकला कटु सत्य है, जिसके पीछे यह जताने की मंशा थी कि हम तो इतना ज्यादा और विविधता पूर्ण पढ़ाते हैं कि हमारे यहां पढ़कर निकला बच्चा मुड़कर पीछे नहीं देखेगा। दिखावट और बाजारवाद के इस दौर में इस शोशेबाजी को भी बिकना ही था, सो बिकी और अभिभावक नाम का जीव अपने नौनिहाल से अचूक तीर मरवाने की गरज पाले हुए इस बस्ते का बोझ सहर्ष बढ़वाता चला गया। उसे यह परवाह ही नहीं रही कि बस्ते का यह बोझ मेधा के मामले में कोई दूरी तय करे न करे, बच्चे की कमर, शरीर और भोले मन को जरूर तोड़कर रख देगा और वही हुआ। बच्चों में हड्डी की बीमारी के ज्यादातर मामलों में बस्ते का यह बोझ ही असल कारण बना।

मासूम बचपन पर बस्ते का बोझ न नई बात है, न उसके शरीर और मन पर पड़ते असर की चिंता। सीबीएसई ने भी कुछ साल पूर्व शिक्षकों व अभिभावकों को सुझाव देकर विद्यार्थियों के छोटे-छोटे समूह बनाकर पढ़ाने को कहा था, ताकि हर बच्चे को हर दिन सारी किताबें न लानी पड़ें। इसके लिए हर बच्चे का अलग कैलेंडर बनना था। दूसरी कक्षा तक होमवर्क न देने की बात भी थी। दुर्भाग्य शायद यह है कि सारी बातें तब सुझाव के स्तर पर थीं और हम तब तक कुछ नहीं मानते, जब तक हमें निर्देशों की सीमा में न बांधा जाए। कुछ और भी निर्देश जारी हुए थे। मसलन, निजी प्रकाशकों की पुस्तकों के विषय-वस्तु पर उठे विवाद के बाद सीबीएसई ने ही अपने स्कूलों को किताब, कॉपियों और यूनीफॉर्म की बिक्री से दूर रहने और हर हाल में एनसीईआरटी की ही किताबें पढ़ाने का निर्देश दिया था, लेकिन उसमें भी कुछ नहीं हुआ। निजी स्कूलों की मनमानी फीस वृद्धि पर भी सिर्फ बातें ही हुईं। स्कूलों के वार्षिक आयोजन किस तरह अभिभावकों से धन उगाही का जरिया बनते गए, किसी ने रोकने की जहमत नहीं उठाई। एनसीईआरटी किताबों की बाजार में अनुपलब्धता और निजी प्रकाशकों की चांदी जैसी पुरानी बहस और चिंता का आज तक कोई समाधान नहीं निकला। यह सब इसलिए कि पढ़ाई को लेकर आज तक कोई समान राष्ट्रीय नीति ही नहीं बन पाई। सवाल अंत में फिर वही है, निर्देश तो सारे अच्छे हैं, इनका कार्यान्वयन सुनिश्चित करने-कराने के लिए कौन-सा दिशा-निर्देश काम करेगा, यह भी तय करना होगा।

GS World टीम...

सारांश

- जीवन मूल्य जीवन को बहुत सार्थक व रचनात्मक बनाते हैं। शिक्षा में, स्कूल-कॉलेजों में इन मूल्यों का प्रवेश व्यापक स्तर पर हो सके तो यह मानवता के वर्तमान के लिए तो बड़ी उपलब्धि होगी ही, भविष्य के लिए और भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।
- हाल के वर्षों में शिक्षा में अनेक सुधार चर्चित रहे हैं। कभी किसी ने कहा कि एक स्तर तक परीक्षा हटा दो, तो फिर किसी ने कहा कि परीक्षा वापस लाओ। कभी किसी ने कहा कि बस्ते का बोझ हल्का करो, तो किसी ने कहा कि यह नया विषय और जोड़ दो। किसी ने कहा शारीरिक दंड पूरी तरह समाप्त करो, तो किसी अन्य ने कहा कि अनुशासन का कोई तौर-तरीका तो अपनाओ।
- अनेक स्तरों पर बेहद संवेदनशील दौर से गुजरते, बहुत गंभीर समस्याओं से जूझते हुए हमारे समाज को कई मायनों में अभूतपूर्व चुनौतियों का सामना करने के लिए अनुकूल जीवन मूल्य चाहिए और इसकी बुनियाद तैयार करने में सबसे अहम भूमिका शिक्षा संस्थानों व परिवार की ही हो सकती है।
- जाति, धर्म, नस्ल, रंग आदि के आधार पर भेदभाव करने से समस्याएं बढ़ती हैं इसलिए इन्हें नकारते हुए हम सभी मनुष्यों की समानता व भलाई में विश्वास रखें। दुनिया के किसी भी भाग में रहने वाले किसी भी व्यक्ति के बारे में हमारी मुख्य सोच उसकी भलाई की ही हो।
- जीवन के किसी भी क्षेत्र में ऐसा न हो कि आधुनिकता के नाम पर समाज के लिए उपयोगी रही मर्यादाओं को अंधाधुंध त्याग दिया जाए। सार्थक परंपराओं व सार्थक बदलाव में एक समन्वय बने। अंधविश्वासों व दकियानूसीपन को छोड़ा जाए।
- मानव संबंधों में एक बहुत बड़ी कमी है कि ये प्रायः अपने विचार, हित, स्वार्थ स्थापित करने पर टिके होते हैं। आधिपत्य के संबंध बहुत समस्याएं लाते हैं क्योंकि दूसरे पक्ष के विचारों व जरूरतों को महत्त्व नहीं दिया जाता है। निरंतर टकराव, दुख, धोखे, झगड़े की संभावना बनी रहती है।
- आजाद भारत में हमने ढेरों शैक्षिक समितियां बनाई, राष्ट्रीय नीतियां बनाई, राष्ट्रीय शैक्षिक आयोग की स्थापनाएं कीं। लेकिन जो नहीं कर पाए वह यह है कि उन तमाम समितियों, आयोगों की सिफारिशों को अमल में नहीं ला पाए।
- जब पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी थी, तब की सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक बुनावट और मांगे कुछ और थीं। जब हम 2018 में शिक्षा से उम्मीद और अपेक्षा की बात करते हैं, तब हमें पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परिवर्तन तो करने होंगे। गौरतलब हो कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) बनाने की घोषणा 2014-15 में ही की गई थी। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की मसविदा समिति की संस्तुतियां दो साल पहले सौंपी भी गई।
- शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हमने कई समझौते किए। 1990, 2000, 2015 आदि में घोषणाएं कीं कि आने वाले वर्षों में हम अपने देश में सभी बच्चों को बुनियादी शिक्षा मुहैया करा देंगे।
- भारत के शिक्षा जगत की त्रासदी यह है कि हमने अपने विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, स्कूलों आदि शैक्षिक संस्थानों को अपनी मौत मरने के लिए छोड़ दिया है। यह सिलसिला 1989 के आसपास शुरू हुआ था, जब हमने शिक्षा और शिक्षण संस्थानों को बाजार के हवाले करने का क्रांतिकारी कदम उठाया था। यही वह साल था जब शिक्षा के द्वार वैश्विक बाजार के लिए खोले गए थे। तब से शिक्षण संस्थानों को स्वायत्त व वित्त पोषित संस्थान बनाने की शुरुआत हुई।
- कोठारी आयोग ने 1964-66 में ही सकल घरेलू उत्पाद का छह फीसद शिक्षा पर देने की वकालत की थी, जो आज भी शिक्षा पर दी जा रही तय राशि से काफी कम है।
- हमने सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय शिक्षा अभियान शुरू किए, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 लागू किया। लेकिन इनसे आखिरकार हासिल क्या हुआ? न तो स्कूली शिक्षा की स्थिति बेहतर हो पाई और न ही स्कूली शिक्षा के स्तर में ही हम गुणात्मक सुधार कर पाए।
- वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर के अध्ययन रिपोर्ट हमें आईना दिखा रहे हैं कि देखिए देश के अधिकांश बच्चे भाषा की बुनियादी दक्षता भी हासिल नहीं कर सके। न उन्हें पढ़ना-लिखना आता है और न ही गणित के सामान्य गुणा-भाग, घटाव ही आते हैं।
- हमने सहस्राब्दी विकास लक्ष्य 2000 में तय किया था कि हम 2015 तक शिक्षा के मूलभूत मसलों को दूर कर अपने बच्चों को बुनियादी शिक्षा मुहैया करा देंगे। लेकिन यह 2015 भी हमारे हाथ से निकल गया।
- हमने 2016 में शिक्षा को सतत विकास लक्ष्य में शामिल किया कि 2030 तक हम अपने बच्चों को बुनियादी शिक्षा किसी भी सूरत में हासिल करा देंगे। इसमें हमने यह भी कहा कि कोई भी बच्चा जाति, वर्ण, वर्ग आदि के आधार पर स्कूल से बाहर नहीं रहेगा। लेकिन हम अपनी ही घोषणाओं को धता बताते रहे हैं। सरकारी और गैर सरकारी रिपोर्टें बताती हैं कि अभी भी तीन करोड़ से भी ज्यादा बच्चे स्कूल से बाहर हैं।
- मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा सभी राज्य सरकारों और केंद्रशासित क्षेत्रों को निर्देश दिए गए हैं कि अब स्कूली बच्चों के बैग का वजन वही होगा, जो कि मंत्रालय ने निर्धारित किया है। अब पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों के बैग का वजन 1.5 किलोग्राम से लेकर दसवीं कक्षा के लिए पांच किलोग्राम तक तय किया गया है।
- साथ ही होमवर्क के लिए भी निर्देश जारी कर दिए गए हैं। पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को होमवर्क देने पर रोक लगा दी गई है। उन्हें कक्षा में सिर्फ मातृभाषा और गणित पढ़ाई जाएगी। तीसरी से पांचवीं कक्षा के बच्चों को भी निर्धारित तीन विषय एनसीईआरटी की किताबों से ही पढ़ाए जाएंगे।
- 1980 में प्रसिद्ध लेखक आरके नारायण को जब राज्यसभा के लिए मनोनीत किया गया था, तो उन्होंने सदन में अपने एकमात्र भाषण में स्कूली बच्चों पर पढ़ाई और बस्ते के बोझ व स्कूलों में उन्हें रट्टू तोता बनाने की कोशिशों का मुद्दा बड़े जोर से उठाया। इसके बाद मानव संसाधन मंत्रालय ने प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक छह सदस्यीय कमेटी का गठन किया था, जिसे स्कूली शिक्षा में सुधार का एजेंडा निर्धारित करने का काम दिया गया।
- आरके नारायण ने मालगुडी डेज उपन्यास में अल्बर्ट मिशन स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की कहानी के माध्यम से 20वीं सदी के हिन्दुस्तान

में स्कूली शिक्षा और अभिभावकों के तौर-तरीकों को स्वामी और उसके दोस्तों की नजरों से दिखाया था, जिन्हें स्कूली शिक्षा के कठोर सांचे में फिट होने के लिए मजबूर किया जाता है।

- यशपाल कमेटी ने बच्चों पर बस्ते के बोझ की जांच के दौरान समूची स्कूली शिक्षा पर एक आलोचनात्मक ढंग से नजर डाली थी। कमेटी का कहना था कि बस्ते के बोझ की समस्या के कई विचारणीय पहलू हैं।
- यशपाल कमेटी ने पाया कि बच्चों पर पढ़ाई और इम्तिहान का शारीरिक व मानसिक बोझ इतना बढ़ गया है कि वे पढ़ाई से ऊबने लगे हैं। कमेटी ने इस उबाऊ, यांत्रिक, आनंद रहित शिक्षा के कारणों और उसे 'सानंद-शिक्षा' बनाने के उपायों पर भी कई रचनात्मक और प्रभावशाली सुझाव दिए थे।
- यशपाल कमेटी ने पाया था कि स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम को तैयार करने में जिन विशेषज्ञों की सेवाएं ली जाती हैं, वे बच्चों के सीखने के तौर-तरीकों से वाकिफ नहीं होते। अक्सर ये विशेषज्ञ बच्चों को ज्यादा से ज्यादा सूचनाएं देना चाहते हैं। वे सूचनाओं को ही ज्ञान समझते हैं। यशपाल कमेटी ने दिल्ली या बड़े शहरों में विशेषज्ञों द्वारा बैठकर बनाए पाठ्यक्रमों की भी आलोचना की, जिसको बनाने में देश के दूर-दराज के इलाकों के गुणी शिक्षकों की कोई राय नहीं ली जाती है।
- कमेटी ने समाज में, खासतौर पर शहरों में शिक्षा को लेकर पैदा हो रही एक भ्रांत धारणा पर भी चिंता प्रकट की। उसका कहना था कि अभिभावकों का यह सोचना कि उनके बच्चे हर परीक्षा में टॉप करें और आगे जाकर डॉक्टर-इंजीनियर बनें, एक अंधी दौड़ को जन्म दे रहा है। कमेटी ने देश के स्कूलों में समुचित आधारभूत सुविधाओं और अच्छे शिक्षकों की कमी पर भी गंभीर चिंता व्यक्त की थी।
- यशपाल कमेटी की जिन प्रमुख सिफारिशों को लेकर 25 वर्ष पूर्व एक राष्ट्रीय सहमति बनी थी, वे थीं- स्कूली बच्चों के पाठ्यक्रम व पाठ्य-पुस्तक निर्माण में शिक्षकों की भागीदारी, प्री-नर्सरी में प्रवेश की न्यूनतम आयु सीमा का निर्धारण, प्री-नर्सरी में प्रवेश के लिए बच्चों के इंटरव्यू को खत्म करना, प्री-नर्सरी में पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग पर पाबंदी, प्राइमरी स्कूलों में होमवर्क व प्रोजेक्ट वर्क पर पाबंदी, प्राइमरी स्कूलों में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात 1:40 रखना और इन स्कूलों में दृश्य-श्रव्य उपकरणों का उपयोग।
- एक अनुमान के अनुसार, देश में अभी 90 लाख स्कूली शिक्षकों की कमी है। इसमें आईटी तकनीक भी बड़ी भूमिका निभा सकती है। यह तय है कि पारंपरिक तौर-तरीके अब नहीं चलेंगे। उनकी जगह बेहतर योजनाओं और आईटी के उपयोग से इनोवेटिव तरीके अपनाने होंगे।
- कैंब्रिज इंटरनेशनल ग्लोबल एजुकेशन सेंसस ने अपनी एक रिपोर्ट में बताया है कि भारत में 74 प्रतिशत बच्चे स्कूल के बाद गणित का ट्यूशन लेते हैं। ट्यूशन लेने वाले बच्चों का यह प्रतिशत दुनिया भर में सबसे ज्यादा है। 72 प्रतिशत बच्चे स्कूल की अन्य गतिविधियों में भी शामिल हैं।
- इस अध्ययन में भारत के अलावा अमेरिका, मलेशिया, अर्जेंटीना, दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान समेत दस देशों को शामिल किया गया था। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि अपने देश में 66 प्रतिशत माता-पिता भी बच्चों की स्कूल में होने वाली गतिविधियों के बारे में लगातार पूछते रहते हैं। इनमें से पचास प्रतिशत स्कूल में होने वाले बहुत से आयोजनों में भी भाग लेते हैं।
- रिपोर्ट के अनुसार, बच्चों की पहली पसंद अब भी डॉक्टर या इंजीनियर बनना है। इसी रिपोर्ट में बताया गया है कि 36.7 प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं, जो सप्ताह में सिर्फ एक घंटा ही खेलते हैं। सिर्फ तीन प्रतिशत बच्चे ऐसे पाए गए, जो सप्ताह में छह घंटे से अधिक खेलते हैं, और 26.4 प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं, जो बिल्कुल नहीं खेलते।

भारत में शिक्षा

- उच्च शिक्षा का अर्थ है- सामान्य रूप से सबको दी जानेवाली शिक्षा से ऊपर किसी विशेष विषय या विषयों में विशेष, विशद तथा सूक्ष्म शिक्षा। यह शिक्षा के उस स्तर का नाम है जो विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक विश्वविद्यालयों, कम्युनिटी महाविद्यालयों, लिबरल आर्ट कॉलेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा दी जाती है।
- प्राथमिक एवं माध्यमिक के बाद यह शिक्षा का तृतीय स्तर है, जो प्रायः ऐच्छिक (non & compulsory) होता है। इसके अन्तर्गत स्नातक, परास्नातक (postgraduate education) एवं व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि आते हैं।
- भारत में उच्च शिक्षा का इतिहास काफी पुराना है। इसके मूल में 19वीं शताब्दी है, जब वाइसरॉय लॉर्ड मैकाले ने अपनी सिफारिशें रखी थीं।
- उसके बाद बीसवीं शताब्दी में सन् 1925 में इंटर यूनिवर्सिटी बोर्ड की स्थापना की गई थी, जिसका बाद में नाम 'भारतीय विश्वविद्यालय संघ' (एसोसिएशन ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटीज) पड़ा। इस संस्था के अंतर्गत सभी विश्वविद्यालयों के बीच शैक्षिक, सांस्कृतिक और संबंधित क्षेत्रों के बारे में सूचना का आदान-प्रदान किया जाने लगा था।
- भारत का उच्च शिक्षा तंत्र अमेरिका, चीन के बाद विश्व का तीसरा सबसे बड़ा उच्च शिक्षा तंत्र है। विगत 50 वर्षों में देश के विश्वविद्यालयों की संख्या में 11.6 गुना, महाविद्यालयों में 12.5 गुना, विद्यार्थियों की संख्या में 60 गुना और शिक्षकों की संख्या में 25 गुना वृद्धि हुई है।
- स्कूल की पढ़ाई करने वाले नौ छात्रों में से एक ही कॉलेज पहुँच पाता है। भारत में उच्च शिक्षा के लिए रजिस्ट्रेशन कराने वाले छात्रों का अनुपात दुनिया में सबसे कम यानी सिर्फ 11 फीसदी है। अमरीका में ये अनुपात 83 फीसदी है।
- दुनिया भर में विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में हुए शोध में से एक तिहाई अमरीका में होते हैं। इसके ठीक विपरीत भारत से सिर्फ 3 फीसदी शोध-पत्र ही प्रकाशित हो पाते हैं।
- 1952 में लक्ष्मीस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग, तथा 1964 में दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर 1968 में शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया गया, जिसमें 'राष्ट्रीय विकास के प्रति वचनबद्ध, चरित्रवान तथा कार्यकुशल' युवक-युवतियों को तैयार करने का लक्ष्य रखा गया।
- मई 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई, जो अब तक चल रही है। इस बीच राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा के लिए 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति, तथा 1993 में प्रो. यशपाल समिति का गठन किया गया।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न (प्रारंभिक परीक्षा)

1. आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडल समिति ने निम्न में से किस समयावधि के लिए नई एकीकृत शिक्षा योजना बनाने के लिए मंजूरी दी है?
   (a) 1 अप्रैल, 2017 से 31 मार्च, 2019
   (b) 1 अप्रैल, 2018 से 31 मार्च, 2020
   (c) 7 सितम्बर, 2024 से 28 अक्टूबर, 2029
   (d) 29 जुलाई, 2018 से 17 अगस्त, 2019 तक
   (उत्तर-b)

2. 'प्रधानमंत्री विद्या लक्ष्मी' योजना का संबंध निम्न में से किससे है?
   (a) आई.आई.टी. की संख्या में बढ़ोत्तरी
   (b) मुम्बई में जनलक्ष्मी संस्थान को उच्च शिक्षा में शामिल करना
   (c) शिक्षा लोन प्रक्रिया से संबंधित
   (d) बोधगया स्थित आई.आई.एम. परिसर में स्कॉलरशिप प्रोजेक्ट
   (उत्तर-c)

3. भारतीय शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में निम्न में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   1. कोठारी आयोग की स्थापना शिक्षा क्षेत्र में नई योजना लागू करने के उद्देश्य से की गयी।
   2. एनसीईआरटी सभी स्कूल शिक्षा प्रणाली को संचालित करने के लिए मुख्य निकाय है।
   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर दीजिए-
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2
   (उत्तर-c)

4. भारतीय शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में निम्न में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   1. भारत में इग्नू (IGNOU) दूरस्थ शिक्षा का समन्वय करने वाला महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालय है।
   2. भारत में तकनीकि शिक्षा का विनियमन AICTE द्वारा किया जाता है।
   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर दीजिए-
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1 और न ही 2
   (उत्तर-c)

5. स्वतंत्र भारत में शिक्षा क्षेत्र के उत्थान के लिए बनाई गई विभिन्न समितियों के प्रभावों की समीक्षा कीजिए।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. निम्नलिखित में से संविधान के किन प्रावधानों का असर शिक्षा पर होता है?
   1. राज्य के नीति- निदेशक तत्व
   2. ग्रामीण एवं शहरी स्थानीय निकाय
   3. पाँचवी अनुसूची
   4. छठी अनुसूची
   5. सातवीं अनुसूची
   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) 1 और 2
   (b) 3, 4 और 5
   (c) 1, 2 और 5
   (d) 1, 2, 3, 4 और 5
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2012, उत्तर-c)

2. संविधान का कौन-सा/से अनुच्छेद यह व्यवस्था करता है कि यह प्रत्येक राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर निर्देशों की पर्याप्त सुविधा मातृभाषा में उपलब्ध कराये?
   (a) अनुच्छेद- 349
   (b) अनुच्छेद- 350
   (c) अनुच्छेद- 350 (A)
   (d) अनुच्छेद-351
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2001, उत्तर-c)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. शिक्षा का अधिकार
   2. सार्वजनिक सेवाओं में बराबर पहुँच का अधिकार
   3. भोजन का अधिकार
   उपर्युक्त में कौन-सा/से मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के तहत मानव अधिकार है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) 1 और 2
   (c) केवल 3
   (d) 1, 2 और 3
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2011, उत्तर-d)

4. भारत में उच्च शिक्षा की गुणता को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बनाने के लिए उसमें भारी सुधारों की आवश्यकता है। क्या आपके विचार में विदेशी शैक्षिक संस्थाओं का प्रवेश देश में उच्च और तकनीकी शिक्षा की गुणता की प्रोन्नति में सहायक होगा? चर्चा कीजिए।
   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2015)

GS World Committed To Excellence

आधुनिक चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध कराने में पीछे भारत

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (सामाजिक न्याय) से संबंधित है।

हमारे देश में हर साल किसी बीमारी की वजह से हजारों ऐसे लोगों की मौत हो जाती है, जिन्हें समय रहते चिकित्सीय सुविधाएं मुहैया करा कर बचाया जा सकता था। लेकिन साल-दर-साल यही स्थिति बनी रहने के बावजूद सरकारों की ओर से बचाव की कोई नियमित व्यवस्था नहीं की जा सकी है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'जनसत्ता' तथा 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

संपादकीयः अनदेखी का रोग (जनसत्ता)

यह आंकड़ा किसी भी देश और वहां की सरकारों के लिए व्यापक चिंता का विषय होना चाहिए। लेकिन हमारे देश में इस तरह के सवालों की अनदेखी करना या उनके प्रति अगंभीर बने रहना एक रिवायत-सी हो गई है। विडंबना यह भी है कि अगर किसी बीमारी की चपेट में आकर जान गंवाने वालों की संख्या तेजी से नहीं बढ़ती है, तो वह मुख्य चिंता की वजह भी नहीं बन पाती।

हमारे देश में हर साल किसी बीमारी की वजह से हजारों ऐसे लोगों की मौत हो जाती है, जिन्हें समय रहते चिकित्सीय सुविधाएं मुहैया करा कर बचाया जा सकता था। यह हर साल संक्रमण या किसी वजह से होने वाली बीमारियों के मामले में साबित होता रहा है, लेकिन साल-दर-साल यही स्थिति बनी रहने के बावजूद सरकारों की ओर से ऐसी कोई नियमित व्यवस्था नहीं की जा सकी है, जिससे किसी रोग के फैलने पर उससे निपटने को लेकर आश्वस्त हुआ जा सके। यही वजह है कि कभी डेंगू तो कभी चिकुनगुनिया या फिर इन्सेफलाइटिस जैसे बुखार फैलने और समय पर इलाज न मिल पाने की वजह से बहुत सारे बच्चों की जान चली जाती है।

रिपोर्ट में यह भी दर्ज है कि भारत में अकेले 2016 में निमोनिया और डायरिया के चलते पांच साल से कम उम्र के दो लाख साठ हजार से ज्यादा बच्चों की मृत्यु हो गई। अगर समय रहते टीकाकरण, उपचार और पोषण की दरों में सुधार जैसे ठोस कदम उठाए जाएं, तो मरने वालों में से कम से कम आधे को बचाया जा सकता है। रिपोर्ट में साफ तौर पर भारत सहित पंद्रह देशों को ऐसी स्वास्थ्य प्रणाली सुनिश्चित करने में पिछड़ा घोषित किया गया है, जिसमें अधिक से अधिक प्रभावित बच्चों को समय पर बीमारियों की रोकथाम और उपचार सेवाएं मुहैया हो सकें।

यानी यह एक अफसोसनाक हकीकत है कि हर साल लाखों बच्चे ऐसी बीमारी की वजह से मर जाते हैं, जिससे निपटने के लिए दुनिया के पास ज्ञान और संसाधन हैं। पिछले कुछ दशकों से आमतौर पर हर साल किसी न किसी संक्रामक बीमारी की वजह से बड़ी तादाद में लोग और खासतौर पर बच्चे प्रभावित हुए और बहुतों की जान चली गई। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में जापानी ज्वर से पीड़ित सैकड़ों बच्चों की मौत से यही साफ हुआ कि एक ओर जहां हमारी स्वास्थ्य सेवाओं में घोर कमी है, दूसरी ओर सरकारों की नींद तब तक नहीं खुलती है, जब तक किसी रोग से बड़ी संख्या में मौतें नहीं होने लगें और वह राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का मुद्दा न बन जाए। सवाल है कि अपने ही नागरिकों के प्रति सरकारों का रवैया इस कदर उपेक्षापूर्ण क्यों रहा है कि आज निमोनिया जैसी बीमारियां भी एक संकट की शक्ल ले रही हैं!

बीमारियों से जूझने में ही लुट रही आम भारतीय की कमाई (हिन्दुस्तान)

यह मच्छरों के प्रकोप का काल है। गांव-कस्बों से लेकर महानगरों तक अस्पतालों में डेंगू-मलेरिया के मरीज पटे पड़े हैं। बहुत छोटे बजट का इस्तेमाल कर मच्छर नियंत्रण से जिन बीमारियों को रोका जा सकता था, औसतन सालाना बीस लाख लोग इनकी चपेट में आकर इनके इलाज पर अपनी गाढ़ी मेहनत की कमाई के अरबों रुपये लुटाने को अभिशप्त हैं। स्वास्थ्य के मामले में भारत की स्थिति दुनिया में शर्मनाक है। चिकित्सा सेवा के मामले में इसके हालात श्रीलंका, भूटान व बांग्लादेश से भी बदतर हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य पत्रिका लांसेट की ताजा रिपोर्ट 'ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज' के अनुसार, स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में हमारा देश दुनिया के कुल 195 देशों की सूची में 145वें स्थान पर है।

देश के आंचलिक कस्बों की बात तो दूर, राजधानी दिल्ली के एम्स या सफदरजंग जैसे अस्पतालों की भीड़ और आम मरीजों की दुर्गति किसी से छिपी नहीं है। एक तो हम जरूरत के मुताबिक डॉक्टर तैयार नहीं कर पा रहे, दूसरा, देश की बड़ी आबादी न तो स्वास्थ्य के बारे में पर्याप्त जागरूक है और न ही उनके पास आकस्मिक बीमारी के हालात में किसी बीमा या अर्थ की व्यवस्था है। हालांकि, सरकार गरीबों के लिए मुफ्त इलाज की कई योजनाएं चलाती है, लेकिन व्यापक अशिक्षा और गैर-जागरूकता के कारण ऐसी योजनाएं माकूल नहीं हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार ही देश में कोई 8.18 लाख डॉक्टर मौजूद हैं। ऐसे में, यदि आबादी 1.33 अरब मान ली जाए, तो औसतन प्रति हजार व्यक्ति पर एक डॉक्टर का आंकड़ा भी बहुत दूर लगता है। जिस पर मेडिकल की पढ़ाई इतनी महंगी है कि हर डॉक्टर बनने वाले युवा के सामने सबसे पहले शायद कमाने का रोडमैप ही आता हो, सेवा तो बहुत दूर की बात है।

पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया यानी पीएचएफआई की एक रिपोर्ट बताती है कि 2017 में देश के साढ़े पांच करोड़ लोगों के लिए स्वास्थ्य पर किया गया व्यय आउट ऑफ पॉकेट यानी औकात से अधिक व्यय की सीमा से पार रहा। यह संख्या दक्षिण कोरिया या स्पेन या केन्या की आबादी से कहीं अधिक है। इनमें से 60 फीसदी यानी तीन करोड़, अस्सी लाख लोग अस्पताली खर्चों के चलते गरीबी रेखा से नीचे आ गए।

भारत में लोगों की जान और जेब पर सबसे भारी पड़ने वाली बीमारियों में 'दिल और दिमागी दौरे' सबसे आगे हैं। भारत के पंजीयक और जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि 2015 में दर्ज 53 लाख, 74 हजार, आठ सौ चौबीस मौतों में से 32.8 प्रतिशत इस तरह के दौरों के

सूक्ष्म पोषक तत्वों को लोगों तक पहुंचाने की बड़ी लड़ाई

(हिन्दुस्तान)

जो लोग अपने खान-पान को लेकर खास सतर्क रहते हैं, वे भी 'माइक्रोन्यूट्रिएंट डिफिशिएंसी' यानी शरीर के सामान्य ग्रोथ के लिए जरूरी विटामिन, मिनरल जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का शिकार हो सकते हैं। यानी यह बीमारी आर्थिक हालात, लिंग और उम्र नहीं देखती। चूंकि शरीर पर इन पोषक तत्वों में कमी के लक्षण तब तक नहीं उभरते, जब तक कि वे बहुत ज्यादा कम न हो जाएं, इसीलिए अमूमन इसका इलाज तब शुरू होता है, जब स्थिति बिगड़ चुकी होती है और नुकसान तयशुदा लगने लगता है। दुनिया भर में कुल बीमारी की 7.3 फीसदी की वजह 'माइक्रोन्यूट्रिएंट डिफिशिएंसी' है। इसके तीन सामान्य रूप हैं- आयरन, विटामिन-ए और आयोडीन की कमी। इनसे दुनिया का हर तीन में से एक शख्स जूझ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक, 'फूड फोर्टिफिकेशन' यानी अतिरिक्त पोषक पदार्थों को मिलाना जन-स्वास्थ्य की दिशा में काफी किफायती व प्रभावशाली हस्तक्षेप है, जिसे मौजूदा प्रौद्योगिकी और वितरण प्रणाली से लोगों तक पहुंचाया जा सकता है।

बावजूद इसके भारत में छह माह से लेकर 23 महीने तक के 100 में से दस बच्चे को भी पर्याप्त आहार नहीं मिल पा रहा। यह आंकड़ा राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण- 4 (2015-16) का है। इस मामले में शहर और गांवों का अंतर नाममात्र का है। महज 11.6 फीसदी शहरी बच्चों को पर्याप्त आहार (जिसमें दूध को छोड़कर चार या इससे अधिक खाद्य समूह शामिल हैं) मिल पाता है, जबकि ग्रामीण बच्चों की संख्या सिर्फ 8.8 फीसदी है। इतना ही नहीं, देश में पांच वर्ष से कम उम्र के तीन में से एक बच्चे का वजन कम है, जिसमें 29 फीसदी शहरी बच्चे भी शामिल हैं। यहां करीब 70 फीसदी किशोर लड़कियां खून की कमी यानी एनीमिया से जूझ रही हैं और लगभग 50 फीसदी कम वजन की हैं। भारत ही वह देश है, जहां दुनिया में सबसे अधिक 'स्टंटेड' यानी नाटे कद के बच्चे मिलते हैं। यहां कुपोषण की वजह से पांच वर्ष से कम उम्र के हर पांच में से दो बच्चे इसका शिकार हैं। इस कारण बच्चों की मानसिक और सीखने की क्षमता तो कम हो ही जाती है, वर्तमान में उनमें संक्रमण का खतरा भी बढ़ जाता है और भविष्य में डायबिटीज, हाई बीपी और मोटापा जैसे रोग होने का जोखिम कहीं ज्यादा होता है।

भारत में दूध को विटामिन डी के साथ, गेहूं के आटे व चावल को आयरन, विटामिन बी12 और फोलिक एसिड के साथ, दूध व खाद्य तेल को विटामिन ए व डी के साथ और नमक को आयरन के साथ मिलाकर बाजार में बेचा जाता है। नमक को आयोडीन व आयरन के साथ 'डबल फोर्टिफाइड' भी किया जाता है। नए मानकों के तहत अब आटा, मैदा, चावल, नमक, वनस्पति तेल और दूध के अतिरिक्त पोषक तत्वों की न्यूनतम व अधिकतम सीमा बताई जाने लगी है। अधिसूचना में यह भी कहा गया है कि 'फोर्टिफाइड' खाद्य पदार्थों की पहचान के लिए उन पर '+एफ' लिखा होना चाहिए। चूंकि प्रोसेस्ड फूड (प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों) को ही सुदृढ़ किया जा सकता है, इसीलिए भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण यानी एफएसएसएआई, टाटा ट्रस्ट्स इंडिया न्यूट्रिशन इनिशिएटिव के साथ निजी खाद्य कारोबार पर गंभीरता से काम कर रहा है, ताकि इसकी पहुंच बढ़ सके।

अपने देश में 2017 के बाद से एकीकृत बाल विकास योजनाओं (आईसीडीएस) और मिड डे मील प्रोग्राम में 'फोर्टिफाइड' आटा, तेल और 'डबल फोर्टिफाइड' नमक का इस्तेमाल किया जा रहा है। फिलहाल 15 राज्य व तीन केंद्रशासित क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के तहत 'फोर्टिफाइड' खाद्य पदार्थ बांटे जा रहे हैं। एफएसएसएआई के मुताबिक, तय मानकों को अपनाने के बाद अभी 62 अग्रणी प्रसंस्कृत खाद्य-पदार्थ कारण हुई। एक अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन का अनुमान है कि भारत में उच्च रक्तचाप से ग्रस्त लोगों की संख्या 2025 तक 21.3 करोड़ हो जाएगी, जो 2002 में 11.82 करोड़ थी। यह ऐसी बीमारी है, जिसका खर्च किसी का बजट बिगाड़ देता है।

डायबिटीज भी महामारी की तरह फैल रही है और कोई 7.4 करोड़ लोग इसके शिकार हैं। सरकार का अनुमान है कि इस पर हर साल मरीज सवा दो लाख करोड़ की दवाएं खा रहे हैं, जो देश के कुल स्वास्थ्य बजट का दस फीसदी से ज्यादा है। बीते 25 बरसों में भारत में डायबिटीज के मरीजों की संख्या में 65 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अब डायबिटीज खुद में तो कोई रोग है नहीं, यह अपने साथ किडनी, त्वचा, उच्च रक्तचाप और दिल की बीमारियां साथ लेकर आता है। दवा एक बार शुरू हो जाए, तो मात्रा बढ़ती ही जाती है। इसने आम से लेकर खास तक सभी का बजट बिगाड़ दिया है।

स्वास्थ्य सेवाओं की जर्जरता की बानगी सरकार की सबसे प्रीमियम स्वास्थ्य योजना सीजीएचएस यानी केंद्रीय कर्मचारी स्वास्थ्य सेवा है। इस योजना के तहत पंजीकृत लोगों में चालीस फीसदी डायबिटीज के मरीज हैं और वे हर महीने केवल नियमित दवा लेने जाते हैं। एक मरीज की औसतन हर दिन की दवा पचास रुपये की होती है। वहीं स्टेम सेल से डायबिटीज के स्थाई इलाज का व्यय महज सवा से दो लाख रुपया है, लेकिन सीजीएचएस में यह इलाज शामिल नहीं है। ऐसे ही कई अन्य रोग हैं, जिनकी आधुनिक चिकित्सा तो उपलब्ध है, लेकिन वे सीजीएचएस में शामिल ही नहीं हैं।

निर्माता कंपनियां सभी पांचों 'फोर्टिफाइड' खाद्य पदार्थों के 110 ब्रांड बेच रही हैं। हालांकि, लगभग 47 फीसदी पैकेटबंद खाद्य तेल और 21 फीसदी दूध 'फोर्टिफाइड' हैं, बावजूद इसके अभी इस दिशा में काफी कुछ किया जाना शेष है। मसलन, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड 2016 से अपने सभी दूध को विटामिन ए और डी के साथ मिलाकर बेच रहा है, हालांकि दूध बेचने वाले सभी उद्योग ऐसा नहीं कर रहे।

GS World टीम...

सारांश

- हमारे देश में हर साल किसी बीमारी की वजह से हजारों ऐसे लोगों की मौत हो जाती है, जिन्हें समय रहते चिकित्सीय सुविधाएं मुहैया करा कर बचाया जा सकता था। यह हर साल संक्रमण या किसी वजह से होने वाली बीमारियों के मामले में साबित होता रहा है, लेकिन साल-दर-साल यही स्थिति बनी रहने के बावजूद सरकारों की ओर से ऐसी कोई नियमित व्यवस्था नहीं की जा सकी है, जिससे किसी रोग के फैलने पर उससे निपटने को लेकर आश्वस्त हुआ जा सके।
- कभी डेंगू तो कभी चिकुनगुनिया या फिर इन्सेफलाइटिस जैसे बुखार फैलने और समय पर इलाज न मिल पाने की वजह से बहुत सारे बच्चों की जान चली जाती है।
- रिपोर्ट में यह भी दर्ज है कि भारत में अकेले 2016 में निमोनिया और डायरिया के चलते पांच साल से कम उम्र के दो लाख साठ हजार से ज्यादा बच्चों की मृत्यु हो गई। अगर समय रहते टीकाकरण, उपचार और पोषण की दरों में सुधार जैसे ठोस कदम उठाए जाएं, तो मरने वालों में से कम से कम आधे को बचाया जा सकता है।
- रिपोर्ट में साफ तौर पर भारत सहित पंद्रह देशों को ऐसी स्वास्थ्य प्रणाली सुनिश्चित करने में पिछड़ा घोषित किया गया है, जिसमें अधिक से अधिक प्रभावित बच्चों को समय पर बीमारियों की रोकथाम और उपचार सेवाएं मुहैया हो सकें।
- पिछले कुछ दशकों से आमतौर पर हर साल किसी न किसी संक्रामक बीमारी की वजह से बड़ी तादाद में लोग और खासतौर पर बच्चे प्रभावित हुए और बहुतों की जान चली गई। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में जापानी ज्वर से पीड़ित सैकड़ों बच्चों की मौत से यही साफ हुआ कि एक ओर जहां हमारी स्वास्थ्य सेवाओं में घोर कमी है, दूसरी ओर सरकारों की नींद तब तक नहीं खुलती है, जब तक किसी रोग से बड़ी संख्या में मौतें नहीं होने लगें और वह राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का मुद्दा न बन जाए।
- स्वास्थ्य के मामले में भारत की स्थिति दुनिया में शर्मनाक है। चिकित्सा सेवा के मामले में इसके हालात श्रीलंका, भूटान व बांग्लादेश से भी बदतर हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य पत्रिका लांसेट की ताजा रिपोर्ट 'ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज' के अनुसार, स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में हमारा देश दुनिया के कुल 195 देशों की सूची में 145वें स्थान पर है।
- एक तो हम जरूरत के मुताबिक डॉक्टर तैयार नहीं कर पा रहे, दूसरा, देश की बड़ी आबादी न तो स्वास्थ्य के बारे में पर्याप्त जागरूक है और न ही उनके पास आकस्मिक बीमारी के हालात में किसी बीमा या अर्थ की व्यवस्था है।
- हालांकि, सरकार गरीबों के लिए मुफ्त इलाज की कई योजनाएं चलाती है, लेकिन व्यापक अशिक्षा और गैर-जागरूकता के कारण ऐसी योजनाएं माकूल नहीं हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार ही देश में कोई 8.18 लाख डॉक्टर मौजूद हैं। ऐसे में, यदि आबादी 1.33 अरब मान ली जाए, तो औसतन प्रति हजार व्यक्ति पर एक डॉक्टर का आंकड़ा भी बहुत दूर लगता है।
- पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया यानी पीएचएफआई की एक रिपोर्ट बताती है कि 2017 में देश के साढ़े पांच करोड़ लोगों के लिए स्वास्थ्य पर किया गया व्यय आउट ऑफ पॉकेट यानी औकात से अधिक व्यय की सीमा से पार रहा। यह संख्या दक्षिण कोरिया या स्पेन या केन्या की आबादी से कहीं अधिक है। इनमें से 60 फीसदी यानी तीन करोड़, अस्सी लाख लोग अस्पताली खर्चों के चलते गरीबी रेखा से नीचे आ गए।
- भारत में लोगों की जान और जेब पर सबसे भारी पड़ने वाली बीमारियों में 'दिल और दिमागी दौरे' सबसे आगे हैं। भारत के पंजीयक और जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि 2015 में दर्ज 53 लाख, 74 हजार, आठ सौ चौबीस मौतों में से 32.8 प्रतिशत इस तरह के दौरों के कारण हुई। एक अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन का अनुमान है कि भारत में उच्च रक्तचाप से ग्रस्त लोगों की संख्या 2025 तक 21.3 करोड़ हो जाएगी, जो 2002 में 11.82 करोड़ थी। यह ऐसी बीमारी है, जिसका खर्च किसी का बजट बिगाड़ देता है।
- डायबिटीज भी महामारी की तरह फैल रही है और कोई 7.4 करोड़ लोग इसके शिकार हैं। सरकार का अनुमान है कि इस पर हर साल मरीज सवा दो लाख करोड़ की दवाएं खा रहे हैं, जो देश के कुल स्वास्थ्य बजट का दस फीसदी से ज्यादा है। बीते 25 बरसों में भारत में डायबिटीज के मरीजों की संख्या में 65 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
- स्वास्थ्य सेवाओं की जर्जरता की बानगी सरकार की सबसे प्रीमियम स्वास्थ्य योजना सीजीएचएस यानी केंद्रीय कर्मचारी स्वास्थ्य सेवा है। इस योजना के तहत पंजीकृत लोगों में चालीस फीसदी डायबीटीज के मरीज हैं और वे हर महीने केवल नियमित दवा लेने जाते हैं। एक मरीज की औसतन हर दिन की दवा पचास रुपये की होती है। वहीं स्टेम सेल से डायबीटीज के स्थाई इलाज का व्यय महज सवा से दो लाख रुपया है, लेकिन सीजीएचएस में यह इलाज शामिल नहीं है।
- दुनिया भर में कुल बीमारी की 7.3 फीसदी की वजह 'माइक्रोन्यूट्रिएंट डिफिशिएंसी' है। इसके तीन सामान्य रूप हैं- आयरन, विटामिन-ए और आयोडीन की कमी। इनसे दुनिया का हर तीन में से एक शख्स जूझ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक, 'फूड फोर्टिफिकेशन' यानी अतिरिक्त पोषक पदार्थों को मिलाना जन-स्वास्थ्य की दिशा में काफी किफायती व प्रभावशाली हस्तक्षेप है, जिसे मौजूदा प्रौद्योगिकी और वितरण प्रणाली से लोगों तक पहुंचाया जा सकता है।
- भारत में छह माह से लेकर 23 महीने तक के 100 में से दस बच्चे को भी पर्याप्त आहार नहीं मिल पा रहा। यह आंकड़ा राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण- 4 (2015-16) का है। इस मामले में शहर और गांवों का अंतर नाममात्र का है। महज 11.6 फीसदी शहरी बच्चों को पर्याप्त आहार (जिसमें दूध को छोड़कर चार या इससे अधिक खाद्य समूह शामिल हैं) मिल पाता है, जबकि ग्रामीण बच्चों की संख्या सिर्फ 8.8 फीसदी है।
- इतना ही नहीं, देश में पांच वर्ष से कम उम्र के तीन में से एक बच्चे का वजन कम है, जिसमें 29 फीसदी शहरी बच्चे भी शामिल हैं। यहां करीब 70 फीसदी किशोर लड़कियां खून की कमी यानी एनीमिया से जूझ रही हैं और लगभग 50 फीसदी कम वजन की हैं। भारत ही वह देश है, जहां दुनिया में सबसे अधिक 'स्टंटेड' यानी

नाटे कद के बच्चे मिलते हैं। यहां कुपोषण की वजह से पांच वर्ष से कम उम्र के हर पांच में से दो बच्चे इसका शिकार हैं।

- भारत में दूध को विटामिन डी के साथ, गेहूं के आटे व चावल को आयरन, विटामिन बी12 और फोलिक एसिड के साथ, दूध व खाद्य तेल को विटामिन ए व डी के साथ और नमक को आयरन के साथ मिलाकर बाजार में बेचा जाता है। नमक को आयोडीन व आयरन के साथ 'डबल फोर्टिफाइड' भी किया जाता है।
- चूंकि प्रोसेस्ड फूड (प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों) को ही सुदृढ़ किया जा सकता है, इसीलिए भारतीय खाद्य संरक्षा एवं मानक प्राधिकरण यानी एफएसएसएआई, टाटा ट्रस्ट्स इंडिया न्यूट्रिशन इनिशिएटिव के साथ निजी खाद्य कारोबार पर गंभीरता से काम कर रहा है, ताकि इसकी पहुंच बढ़ सके।
- देश में 2017 के बाद से एकीकृत बाल विकास योजनाओं (आईसीडीएस) और मिड डे मील प्रोग्राम में 'फोर्टिफाइड' आटा, तेल और 'डबल फोर्टिफाइड' नमक का इस्तेमाल किया जा रहा है। फिलहाल 15 राज्य व तीन केंद्रशासित क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के तहत 'फोर्टिफाइड' खाद्य पदार्थ बांटे जा रहे हैं।
- एफएसएसएआई के मुताबिक, तय मानकों को अपनाने के बाद अभी 62 अग्रणी प्रसंस्कृत खाद्य-पदार्थ निर्माता कंपनियां सभी पांचों 'फोर्टिफाइड' खाद्य पदार्थों के 110 ब्रांड बेच रही हैं। हालांकि, लगभग 47 फीसदी पैकेटबंद खाद्य तेल और 21 फीसदी दूध 'फोर्टिफाइड' हैं, बावजूद इसके अभी इस दिशा में काफी कुछ किया जाना शेष है। मसलन, राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड 2016 से अपने सभी दूध को विटामिन ए और डी के साथ मिलाकर बेच रहा है, हालांकि, दूध बेचने वाले सभी उद्योग ऐसा नहीं कर रहे।

भारत में स्वास्थ्य

- भारत में कई सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक और प्रशासनिक कारणों से स्वास्थ्य सेवा एक उपेक्षित क्षेत्र रहा है। देश के अधिकांश भागों में स्वास्थ्य के लिए जरूरी बुनियादी हालातों: जैसे- सुरक्षित पानी, अच्छा पोषण और मल-मूत्र आदि के सुरक्षित निपटारे आदि का अभाव है। इसलिये संक्रामक और कुपोषण आदि बीमारियों का भारत में ज्यादा प्रचलन है। इन हालातों में स्वास्थ्य सेवाएं रोगों से बचाव की जगह रोगों को ठीक करने में ही केन्द्रित हैं।
- भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का विकास बहुत ही असमान रहा है। शहरी लोगों पर ज्यादा ध्यान दिया गया है और गाँवों को नजरअंदाज किया गया है। इसके अलावा, गाँवों में स्वास्थ्य सेवाओं की समस्या के कई पहलू हैं। ज्यादातर देशों में स्वास्थ्य सेवाएं सरकार द्वारा उपलब्ध करवाई जाती हैं, परन्तु भारत में इसका बहुत बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्र द्वारा मिलता है।
- सार्वजनिक क्षेत्र में मुख्यत: बचाव संबंधी सेवाओं: जैसे- टीकाकरण का काम होता है। वैसे भी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं काफी सीमित हैं। लोग महँगी निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर निर्भर रहने को मजबूर हैं। इसके अलावा, निजी क्षेत्र नियंत्रित नहीं है। इलाज ढंग का नहीं होता और उसके लिए बहुत ज्यादा पैसा वसूला जाता है। अक्सर बिना जरूरत के दवाएं दे दी जाती हैं।
- स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच और इनकी गुणवत्ता (एचएक्यू) मामले में भारत 145वें स्थान पर है। लैंसेट के अध्ययन के अनुसार, भारत 195 देशों की सूची में अपने पड़ोसी देश चीन, बांग्लादेश, श्रीलंका और भूटान से भी पीछे है।
- 'ग्लोबल बर्डेन ऑफ डिजीज' अध्ययन में हालांकि कहा गया है कि स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच और गुणवत्ता मामले में वर्ष 1990 के बाद से भारत की स्थिति में सुधार देखे गए हैं।
- वर्ष 2016 में स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुंच और गुणवत्ता के मामले में भारत को 41.2 अंक मिले हैं। तो वहीं, वर्ष 1990 में 24.7 अंक मिले थे।
- इसके अनुसार, वर्ष 2016 में गोवा और केरल के सबसे अधिक अंक रहे। प्रत्येक को 60 से अधिक अंक मिले, जबकि असम और उत्तर प्रदेश को सबसे कम अंक मिले, दोनों के अंक 40 से कम रहे।
- भारत सूची में चीन (48), श्रीलंका (71), बांग्लादेश (133) और भूटान (134) से भी नीचे है, जबकि स्वास्थ्य सूची (हेल्थ इंडेक्स) में भारत का स्थान नेपाल (149), पाकिस्तान (154) और अफगानिस्तान (191) से बेहतर है।
- 2016 में एचएक्यू के मामले में जिन पांच देशों का प्रदर्शन सबसे उम्दा रहा, वे आइसलैंड (97.1), नॉर्वे (96.6), नीदरलैंड (96.1), लक्जमबर्ग (96.0) और फिनलैंड व ऑस्ट्रेलिया हैं (प्रत्येक 95.9)।
- सबसे बुरा प्रदर्शन करने वाले देशों में केंद्रीय अफ्रीकन गणराज्य (18.6), सोमालिया (19.0), गिनी-बिसाउ (23.4), चाड (25.4) और अफगानिस्तान (25.9) रहे।
- अध्ययन के अनुसार, तपेदिक (टीबी), दिल की बीमारी, पक्षाघात, टेस्टिक्युलर कैंसर, कोलोन कैंसर और किडनी की बीमारी से निपटने के मामलों में भारत का बेहद खराब प्रदर्शन है।
- रिपोर्ट में बताया गया है कि 2000-2016 के बीच वैश्विक स्तर पर अनेक देशों ने बेहतर प्रदर्शन किया है। इन देशों में कम व मध्यम आय वाले उप-सहारा मरुस्थल के अफ्रीकी देश व दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ इथोपिया, रवांडा, इक्वेटोरियल गिनी, म्यांमार व कंबोडिया शामिल हैं। वहीं, अमेरिका और प्यूर्टोरिको, पनामा व मेक्सिको जैसे लैटिन अमेरिकी देशों की प्रगति स्वास्थ्य के मामले में थम सी गयी है या उसमें कमी आयी है।
- भारत में 7,54,724 बिस्तरों वाले कुल 19,653 सरकारी अस्पताल हैं। इनमें ग्रामीण क्षेत्र में 15,818 अस्पताल और शहरी क्षेत्र में 3,835 अस्पताल हैं। भारत की सत्तर प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है, जिनके इलाज के लिए लगभग 1,53,655 स्वास्थ्य उप-केंद्र 25,308 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और 5,396 सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र हैं।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भारत परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा है और वर्तमान में यहां के स्वास्थ्य क्षेत्र के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। इनमें स्वास्थ्य के स्तर में सुधार लाना, जनता को बीमारियों से बचाना, जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप बेहतर जवाबदेही सुनिश्चित करना, स्वास्थ्य सेवाओं को सुलभ बनाना तथा इनकी गुणवत्ता, निरंतरता व स्थिरता को सुनिश्चित करना प्रमुख हैं।
- भारत में सरकारों ने स्वास्थ्य क्षेत्र में अनेक कदम उठाए हैं, जिनमें राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 1983, स्थानीय संस्थाओं को शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के 73वें व 74वें संशोधन, राष्ट्रीय पोषण नीति 1993, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, भारतीय चिकित्सा, होम्योपैथी, दवा पर राष्ट्रीय नीति 2002, गरीब स्वास्थ्य बीमा योजना 2003, सरकार के सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम 2004 में स्वास्थ्य को शामिल करना है। इनके अतिरिक्त राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और सार्वभौमिक स्वास्थ्य योजना भी बारहवीं पंचवर्षीय योजना में शामिल हैं।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. राष्ट्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा जारी 'स्वास्थ्य प्रोफाइल 2018 रिपोर्ट' के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. यह रिपोर्ट वर्ष 2005 से स्वास्थ्य मंत्रालय जारी करता है।
   2. इस रिपोर्ट के अनुसार स्वाइन फ्लू संक्रामक रोगों के कारणों से होने वाली मौतों में प्रमुख वजह है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?

   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-b)

2. संसद द्वारा नयी स्वास्थ्य नीति किस वर्ष पारित की गयी?

   (a) 2012 (b) 2007
   (c) 2010 (d) 2017

   (उत्तर-d)

3. हाल ही में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने 'प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना' के संबंध में क्या निर्णय लिया/लिये?
   1. वर्ष 2019-20 तक 12वीं पंचवर्षीय योजना से आगे तक इसको जारी रखा जायेगा।
   2. इस योजना के अंतर्गत एम्स एवं सरकारी मेडिकल कॉलेज स्थापित करने की योजना बनाई गई है।

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-

   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-c)

4. 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना' के संदर्भ में निम्न में कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   1. केन्द्र सरकार के श्रम एवं रोजगार मंत्रालय द्वारा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के लिए यह योजना प्रारंभ की गयी।
   2. वर्ष 2017 में राजस्थान के अलवर से इस योजना का प्रारंभ किया गया।

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-

   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-a)

5. अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य पत्रिका 'लांसेट' की ताजा रिपोर्ट 'ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज' के अनुसार, स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में हमारा देश दुनिया के कुल 195 देशों की सूची में 145वें स्थान पर है। टिप्पणी कीजिए।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची में निम्नलिखित में से कौन-सा एक विषय सम्मिलित है?

   (a) खानों और तेल-क्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन
   (b) कृषि
   (c) मत्स्यिकी
   (d) लोक स्वास्थ्य

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2006, उत्तर-a)

2. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के संदर्भ में प्रशिक्षित सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता 'आशा' (ASHA) के कार्य निम्नलिखित में से कौन-से हैं?
   1. स्त्रियों को प्रसव-पूर्व देखभाल जाँच के लिए स्वास्थ्य सुविधा केन्द्र साथ ले जाना।
   2. गर्भावस्था के प्रारम्भिक संसूचन के लिए गर्भावस्था परीक्षण किट प्रयोग करना
   3. पोषण एवं प्रतिरक्षण के विषय में सूचना देना
   4. बच्चे का प्रसव कराना

   निम्नलिखित कूटों के आधार पर सही उत्तर चुनिए-

   (a) 1, 2 और 3
   (b) 2 और 4
   (c) 1 और 3
   (d) 1, 2, 3 और 4

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2012, उत्तर-d)

3. सार्वजनिक स्वास्थ्य संरक्षण प्रदान करने में सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली की अपनी परिसीमाएँ हैं। क्या आपके विचार में खाई को पाटने में निजी क्षेत्रक सहायक हो सकता है? आप अन्य कौन-से व्यवहार्य विकल्प सुझाएँगे?

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2015)

4. भारत में बेहतर पोषण व स्वास्थ्य सुनिश्चित करने के लिए खाद्य उद्योग में गुलाबी क्रांति के प्रोन्नति हेतु उपायों को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। इस कथन पर आलोचनात्मक प्रकाश डालिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2013)

GS World Committed To Excellence

भारतीय पितृसत्तात्मक समाज एवं हिंसा

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1 (भारतीय समाज) से संबंधित है।

गैर- सरकारी संगठन 'सहज' ने 'इक्वल मीजर्स 2030' के साथ मिल कर किए गए अपने अध्ययन की रिपोर्ट में लैंगिक आधार पर हिंसा को देश की सबसे बड़ी चिंताओं में से एक बताते हुए यह तथ्य उजागर किया है कि भारत में करीब एक-तिहाई शादीशुदा महिलाएं पति के हाथों हिंसा का शिकार होती हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्र 'जनसत्ता' में प्रकाशित लेख का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

संपादकीयः पितृसत्ता की हिंसा (जनसत्ता)

वडोदरा के एक गैरसरकारी संगठन 'सहज' ने 'इक्वल मीजर्स 2030' के साथ मिल कर किए गए अपने अध्ययन की रिपोर्ट में लैंगिक आधार पर हिंसा को देश की सबसे बड़ी चिंताओं में से एक बताते हुए यह तथ्य उजागर किया है कि भारत में करीब एक-तिहाई शादीशुदा महिलाएं पति के हाथों हिंसा का शिकार होती हैं। इससे ज्यादा परेशान करने वाली बात यह है कि कई महिलाओं को पति के हाथों पिटाई से कोई गुरेज नहीं है।

किसी भी समाज के सभ्य और संवेदनशील होने का पैमाना इससे तय किया जाना चाहिए कि उसका स्त्रियों और कमजोर तबकों के प्रति क्या रवैया है? लेकिन ज्यादातर समाजों में विकास के दिखने वाले कारकों पर ध्यान दिया जाता है और सामाजिक विकास के इस सवाल की अनदेखी की जाती है कि स्त्रियों के क्या अधिकार हैं और उन्हें कैसा जीवन जीना पड़ रहा है। घर की दहलीज से बाहर महिलाओं के खिलाफ सामान्य आपराधिक घटनाएं तो एक बड़ी समस्या हैं ही, अपने ही परिवार में हिंसा का सामना करने वाली स्त्रियों की स्थिति शायद ज्यादा जटिल होती है।

इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि देश में इतनी बड़ी तादाद में महिलाओं को पति की हिंसा का सामना करना पड़ता है और उनकी सुरक्षा के लिए घरेलू हिंसा के विरुद्ध कानून सहित कई व्यवस्थाओं के बावजूद यह एक तल्ख सामाजिक हकीकत है कि उनके पास विरोध करने के विकल्प सीमित होते हैं। पति के हिंसक बर्ताव को सही ठहराना एक विचित्र स्थिति है। लेकिन यह समझना मुश्किल नहीं है कि इसके पीछे पितृसत्तात्मक ढांचे पर टिका समाज और उसके तहत महिलाओं का भी हुआ समाजीकरण मुख्य कारण है। इसमें उन्हें सोचने-समझने की वही दृष्टि हासिल होती है, जिससे अंतिम तौर पर पुरुष-वर्चस्व कायम रहता है। दरअसल, यह पितृसत्तात्मक मूल्यों की हिंसा है, जो बचपन से पुरुषों के भीतर भरे जाते हैं। इस लिहाज से देखें तो भारत में शिक्षा और आर्थिक व्यवस्था में भागीदारी के लिए अलग-अलग मोर्चों पर होने वाली कवायदों में स्त्रियों और पुरुषों के भीतर बचपन से ही पितृसत्तात्मक मूल्यों से तैयार मानस पर सवाल उठाने और उससे लड़ने की दृष्टि के विकास को शामिल नहीं किया जाता। यही वजह है कि कई बार एक आर्थिक रूप से सशक्त व्यक्ति अपने सम्मान और अधिकारों को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं देख पाता।

अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक, एक ओर भारत में आर्थिक विकास की दर अच्छी बताई जाती है, वहीं जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर भेदभाव के शिकार लोगों के लिए समान विकास हासिल करने में यह काफी पीछे है। जहां तक हमारे देश का सवाल है, पिछले कुछ सालों में विकास को अर्थव्यवस्था के आंकड़ों के आईने में ही देखा जाता रहा है। लेकिन इस बीच समाज में महिलाओं की स्थिति और उनके प्रति सामाजिक नजरिए

संपादकीयः जोखिम और हिम्मत (जनसत्ता)

राजधानी दिल्ली की सार्वजनिक बसों में रोजाना का सफर आसान बनाने और खासकर महिलाओं की सुरक्षा का इंतजाम करने के तमाम वादों और दावों की हकीकत क्या है? इसका उदाहरण मंगलवार को हुई एक शर्मनाक घटना के रूप में एक बार फिर सामने आया।

दक्षिणी दिल्ली के महरौली इलाके में एक क्लस्टर बस में महिला सीट पर बैठी एक युवती के पास खड़े युवक ने बेहद अश्लील हरकत की और आपत्ति जताने पर आक्रामक भी हो गया। लेकिन युवती ने पूरी बहादुरी से उसका मुकाबला किया, उसकी पिटाई की और बस रुकवा कर आखिर उसे पुलिस के हवाले किया। दिल्ली में महिलाओं को रोज जिस जोखिम और परेशानी से गुजरना पड़ता है, उसमें यह घटना किसी को सामान्य महत्त्व की लग सकती है। पर यह घटना समूचे सामाजिक रवैये को आईने के सामने रखती और बताती है कि आधुनिकता और विकास के दावों के बीच हमारा समाज किस तरह की कुंठाओं और हीनताओं से ग्रस्त होता गया है।

आखिर भरी बस में उस व्यक्ति के भीतर इतनी हिम्मत कहां से आई कि वह न केवल उस युवती के पास खड़ा होकर अपनी हरकतों से उसे असहज करने लगा, बल्कि आपत्ति जताने पर भी उस पर कोई फर्क नहीं पड़ा? विडंबना यह है कि जब उस युवती ने आवाज उठाई तो बस में मौजूद करीब पचास यात्रियों में से किसी ने उसकी मदद करने की कोई जरूरत नहीं समझी। यहां तक कि बस के ड्राइवर और कंडक्टर भी चुप रहे, जबकि उस महिला की मदद करना उनकी जिम्मेदारी है। बस में कोई पुलिसकर्मी तैनात नहीं था। सिर्फ एक युवक ने लड़की का साथ दिया और आरोपी को पुलिस के आने तक पकड़े रखा। इस समूची घटना में युवती की बहादुरी तारीफ के काबिल है। उसने इस आशंका के बावजूद यह हिम्मत दिखाई कि महिलाओं के साथ ऐसा व्यवहार करने वाले कई बार बेहद हिंसक प्रवृत्ति के भी होते हैं और अपने बचाव में जानलेवा हमला कर देते हैं। पर सच यह है कि आपराधिक मानसिकता वाले लोगों का मनोबल इसीलिए बढ़ता है कि उनके खौफ के सामने कोई आवाज नहीं उठाता जाहिर है, यह सामाजिक रवैये की विडंबना है। सवाल है कि जो सरकारें हर कुछ दिन पर दिल्ली में घर से बाहर कहीं भी आने-जाने के लिए महिलाओं के सफर को सुरक्षित और सहज बनाने का आश्वासन देती रहती हैं, उन्होंने क्या ऐसे इंतजाम किए हैं कि सार्वजनिक बसों में महिलाओं को आज भी ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। डीटीसी और क्लस्टर बसों की तादाद अब भी जरूरत के मुकाबले इतनी कम है कि अक्सर काफी अंतराल के बाद आने वाली बसों में लोग भरे रहते हैं और व्यस्त समय में तो इधर-उधर होने की भी गुंजाइश मुश्किल

में क्या बदलाव आया, इस पर गौर करना जरूरी नहीं समझा गया। एक व्यक्ति के रूप में स्त्री के सम्मान और गरिमा को अधिकार के रूप में देखना और स्वीकार करना विकास के दूसरे क्षेत्रों को भी औचित्य प्रदान करता है। विडंबना यह है कि बहुत सारे समुदायों में भौतिक विकास के पैमाने पर हुए काम को ही आधिकारिक रूप से दर्ज किया जाता है और व्यक्ति की गरिमा और सम्मान के सवाल की अनदेखी की जाती है। इसका हासिल यही होता है कि नजरअंदाज किए गए सामाजिक समूहों की स्थिति विकास पर एक सवाल की तरह होती है, जिसे वाजिब ठहरा पाना कई बार संभव नहीं होता। यों भी, आर्थिक विकास में शामिल सभी कारक तब तक बेमानी हैं, जब तक उसमें एक वंचित समूह के रूप में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण और मानसिकता में बराबरी कायम नहीं हो पाती।

राजनीतिः चारदिवारी में असुरक्षित स्त्री (जनसत्ता)

परंपरागत सोच और रूढ़िवादी मानसिकता की जकड़न ने बहुत कुछ बदल कर भी कुछ न बदलने जैसे हालात बना रखे हैं। यही वजह है कि घरेलू हिंसा का दंश आज भी समाज के हर वर्ग में देखने को मिलता है। अपने ही घर में महिलाओं के साथ हिंसात्मक व्यवहार करने वाले शिक्षित और अशिक्षित हर तबके के लोग हैं।

हमारे समाज की परिवार नामक संस्था की सुदृढ़ता को पूरी दुनिया में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सहयोग भरी पारिवारिक व्यवस्था की धुरी घर की महिलाएं ही हैं। इसके बावजूद जिस आत्मसम्मान और सुरक्षा का परिवेश उनके हिस्से आना चाहिए था, वह आज भी नहीं आया है। हाल ही में एक गैर-सरकारी संगठन 'सहज' और इक्वल मीजर्स 2030 के एक सर्वेक्षण के नतीजे घरेलू स्तर पर महिलाओं के इन्हीं दर्दनाक हालात को बयान करने वाले हैं। सर्वे के मुताबिक भारत में करीब एक-तिहाई शादीशुदा महिलाएं पतियों से पिटाई खाती हैं। इस दुर्व्यवहार से जुड़ा सबसे दुखद पहलू यह है कि अधिकतर महिलाओं को इस पीड़ादायी बर्ताव से कोई खास शिकायत भी नहीं है। यानी शिक्षा के बढ़ते आंकड़ों और सामाजिक बदलाव के दावों के बीच आज भी महिलाएं घरेलू हिंसा के दंश को अपनी नियति मान कर स्वीकार कर रही हैं। यह अध्ययन बताता है कि पंद्रह से उनचास साल के आयु वर्ग की महिलाओं में से करीब सत्ताईस प्रतिशत महिलाएं तो पंद्रह साल की उम्र से ही देहरी के भीतर की जा रही यह हिंसा बर्दाश्त करती आ रही हैं। आज एक ओर हर क्षेत्र में महिलाएं अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं, तो दूसरी ओर ऐसे आंकड़े सोचने को विवश करते हैं कि बाहर ही नहीं, घर में भी औरतों को लेकर हमारी मानसिकता में कुछ खास बदलाव नहीं आया है। सार्वजनिक जीवन के साथ-साथ व्यक्तिगत मोर्चे पर भी स्त्रियां पीड़ादायी परिस्थितियों में जी रही हैं।

दुनिया में हर एक इंसान को सम्मान के साथ जीने का हक है। ऐसे में यह अफसोसनाक तो है कि हमारे समाज में घर के बाहर तो महिलाओं की सुरक्षा और सम्मान एक बड़ा सवाल है ही, दहलीज के भीतर भी हालात अच्छे नहीं हैं। इस सर्वेक्षण के आंकड़े भले ही हमें हैरान और परेशान करें, पर देश की आधी आबादी के हालात की कड़वी सच्चाई को सामने लाने वाले हैं। इससे निकलने वाले संकेत हमारे समाज और परिवार का वह स्याह चेहरा दिखाते हैं जहां स्त्रियां अपने ही आंगन में, अपने ही लोगों की हिंसा झेलने को विवश हैं। मौजूदा दौर में घर के कामकाज के साथ-साथ औरतों को बाहर की जिम्मेदारी तो मिल गई, पर उनके आत्मसम्मान और अस्तित्व का मोल आज भी कुछ नहीं आंका जाता।

दरअसल, ज्यादातर पुरुष पत्नी पर हाथ उठाना या उसे ताना देना अपना हक समझते हैं। कई बार तो इस हद तक मारपीट की जाती है कि महिला की जान तक चली जाती है। बाहर आपराधिक हालात का सामना करने वाली कितनी ही महिलाओं की गरिमा को उनके घर के भीतर ठेस

से निकलती है। ऐसे में ज्यादा परेशानी महिलाओं को होती है, जिन्हें बसों में सवार होने से लेकर उसमें मौजूद कुंठित और आपराधिक मानसिकता वाले पुरुषों की गलत हरकतों का सामना करना पड़ता है।

ज्यादातर महिलाएं कई तरह की मजबूरियों के बीच चुप रह जाती हैं, लेकिन अगर कोई छेड़छाड़ के खिलाफ आवाज उठाती भी है, तो उसे बाकी यात्रियों का साथ नहीं मिल पाता। सरकार और पुलिस-तंत्र की नाकामी के समांतर सवाल है कि यह किस तरह का समाज बन रहा है, जिसमें भरी बस में भी अपराधियों को ऐसी हरकत करने में हिचक नहीं हो रही और उसे ऐसा करते हुए आसपास खड़े तमाम लोग तमाशबीन रहते हैं?

पहुंचाई जाती है। आए दिन होने वाले ऐसे दुर्व्यवहार से कई बीमारियां जड़ें जमा लेती हैं। महिलाएं भावनात्मक टूटन का शिकार बनती हैं। लेकिन आज भी सामाजिक-पारिवारिक दबाव इतना है कि आत्मसम्मान को चोट पहुंचाने वाले व्यवहार को जीते हुए भी अधिकतर महिलाएं चुप्पी को ही चुनती हैं।

एक गैर-सरकारी संस्था के मुताबिक भारत में केवल 0.1 प्रतिशत महिलाएं ही ऐसी हिंसा के खिलाफ मामला दर्ज करवाने के लिए आगे आती हैं। विडंबना ही है कि हमारे परिवारों में महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को व्यवस्थागत समर्थन भी मिलता है। साथ ही पितृसत्तात्मक सोच इसे और पोषित भी करती है। कभी दहेज के नाम पर तो कभी बेटी को जन्म देने के उलाहने रूप में। मारपीट कर उनकी मान-मर्यादा पर आघात करना हमारी पारिवारिक व्यवस्था में आम बात है।

भारत को भले ही एक प्रगतिशील देश माना जाता है, पर समाज में मौजूद परंपरागत सोच और रूढ़िवादी मानसिकता की जकड़न ने बहुत कुछ बदल कर भी कुछ न बदलने जैसे हालात बना रखे हैं। यही वजह है कि घरेलू हिंसा का दंश आज भी समाज के हर वर्ग में देखने को मिलता है। अपने ही घर में महिलाओं के साथ हिंसात्मक व्यवहार करने वाले शिक्षित और अशिक्षित हर तबके के लोग हैं। यहां तक कि संभ्रांत परिवारों के उच्च शिक्षित और ऊंचे ओहदों पर कार्यरत पुरुष भी अपनी पत्नी के साथ भाषाई हिंसा और हाथापाई करते हैं। समस्या यह भी कि स्त्री जीवन के हर पहलू को प्रभावित करने वाले इस दुर्व्यवहार को आज भी व्यक्तिगत मुद्दा माना जाता है। परिवार के लोग भी उस महिला की मदद करने आगे नहीं आते, जो अपने पति की ज्यादतियों का शिकार होती है। अफसोस यह भी है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और अपने अधिकारों को लेकर सजग महिलाएं भी घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। आमतौर पर हम लोग पढ़ी-लिखी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिला को हर तरह से सशक्त और सफल मान लेते हैं। लेकिन महिलाओं के सशक्तीकरण का पक्ष मात्र आर्थिक रूप से सशक्त होना ही नहीं है।

गौरतलब पहलू यह है कि कामकाजी हों या गृहिणियां, महिलाएं हर घर की रीढ़ हैं। शिक्षित और कामकाजी हैं, तो देश की तरक्की में भागीदार हैं। दूरदराज के गांव में बसी हैं, तो अन्नदाता हैं और परिवार को पाल रही हैं। इसके अलावा, किसी न किसी रूप में महिलाएं अनगिनत ऐसे काम संभाल रही हैं, जिनका मोल ही नहीं आंका जा सकता। अपने ही स्वास्थ्य की संभाल में सबसे पीछे और दायित्वों के निर्वहन में सबसे आगे। ऐसे में हर जिम्मेदारी निभाने के बावजूद सराहना तो दूर, अपने ही परिवार में उनके साथ हिंसक व्यवहार किया जाए तो स्थितियां दुर्भाग्यपूर्ण ही कही जाएंगी।

दरअसल, बुनियादी सोच में बदलाव आए बिना घर के भीतर सम्मानजनक और सुरक्षित व्यवहार स्त्रियों के हिस्से नहीं आ सकता है। यह मनुष्यता के मान का मामला है। स्त्री-पुरुष के भेद से परे हर इंसान के आत्मसम्मान का मोल समझने का विषय है। कहना गलत नहीं होगा कि कठोर कानून, योजनाएं और लोगों को जागरूक करने वाले विज्ञापन समाज में महिलाओं की स्थिति न तो बदल पाए हैं और न बदल पाएंगे। सामाजिक-पारिवारिक और उससे भी ज्यादा जरूरी वैचारिक बदलाव आए

GS World Committed To Excellence

बिना जमीनी स्थितियों में सुधार संभव नहीं। सरकार महिलाओं को कानूनन हक तो दे सकती हैं, पर जब तक उनके अपनों की और सामाजिक सोच में परिवर्तन नहीं आता, मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना देने वाला ऐसा पीड़ादायी व्यवहार अपनी जड़ें जमाए रखेगा। स्त्रियों को घर के दायरे में रहने के पीछे उनकी सुरक्षा को एक बड़ा कारण बताया जाता है। लेकिन यह समझना जरूरी है कि दहलीज के भीतर महिलाओं के साथ होने वाली मारपीट मानवाधिकार का एक संवेदनशील मुद्दा है। ऐसे में यह बड़ा सवाल है कि घर के हर सदस्य को भावनात्मक सहारा देने वाली महिलाएं क्यों अपने ही घर के भीतर हिंसात्मक व्यवहार झेलने को विवश हैं? क्यों अपने जीवनसाथी से मिलने वाले कटुतापूर्ण और हिंसक व्यवहार को घर वालों का भी समर्थन मिलता रहता है?

जबकि बंद दरवाजों के पीछे होने वाली इस शारीरिक और मानसिक हिंसा को झेलने वाली महिलाएं चाहे कामकाजी हों या गृहिणी, इस देश की नागरिक हैं। घर हो या दफ्तर, देश का संविधान उन्हें सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार देता है। इसके बावजूद अपनी ही चौखट के भीतर महिलाओं के हिस्से यह वेदना क्यों आ रही है। यहां तक कि वे इस पीड़ा के बारे में कोई जिक्र या कोई संवाद तक नहीं कर पातीं, मानो हर दर्द झेलना उनकी नियति ही बना दी गई है। हिंसा की इस मानसिकता से बाहर आने के लिए जरूरी है कि स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक या देवी न मान कर मनुष्य होने का मान दिया जाए।

GS World टीम...

सारांश

- वडोदरा के एक गैर- सरकारी संगठन 'सहज' ने 'इक्वल मीजर्स 2030' के साथ मिल कर किए गए अपने अध्ययन की रिपोर्ट में लैंगिक आधार पर हिंसा को देश की सबसे बड़ी चिंताओं में से एक बताते हुए यह तथ्य उजागर किया है कि भारत में करीब एक-तिहाई शादीशुदा महिलाएं पति के हाथों हिंसा का शिकार होती हैं।
- किसी भी समाज के सभ्य और संवेदनशील होने का पैमाना इससे तय किया जाना चाहिए कि उसका स्त्रियों और कमजोर तबकों के प्रति क्या रवैया है? लेकिन ज्यादातर समाजों में विकास के दिखने वाले कारकों पर ध्यान दिया जाता है और सामाजिक विकास के इस सवाल की अनदेखी की जाती है कि स्त्रियों के क्या अधिकार हैं और उन्हें कैसा जीवन जीना पड़ रहा है।
- इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि देश में इतनी बड़ी तादाद में महिलाओं को पति की हिंसा का सामना करना पड़ता है और उनकी सुरक्षा के लिए घरेलू हिंसा के विरुद्ध कानून सहित कई व्यवस्थाओं के बावजूद यह एक तल्ख सामाजिक हकीकत है कि उनके पास विरोध करने के विकल्प सीमित होते हैं। पति के हिंसक बर्ताव को सही ठहराना एक विचित्र स्थिति है।
- दरअसल, यह पितृसत्तात्मक मूल्यों की हिंसा है, जो बचपन से पुरुषों के भीतर भरे जाते हैं। इस लिहाज से देखें, तो भारत में शिक्षा और आर्थिक व्यवस्था में भागीदारी के लिए अलग-अलग मोर्चों पर होने वाली कवायदों में स्त्रियों और पुरुषों के भीतर बचपन से ही पितृसत्तात्मक मूल्यों से तैयार मानस पर सवाल उठाने और उससे लड़ने की दृष्टि के विकास को शामिल नहीं किया जाता।
- अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक, एक ओर भारत में आर्थिक विकास की दर अच्छी बताई जाती है, वहीं जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर भेदभाव के शिकार लोगों के लिए समान विकास हासिल करने में यह काफी पीछे है। जहां तक हमारे देश का सवाल है, पिछले कुछ सालों में विकास को अर्थव्यवस्था के आंकड़ों के आईने में ही देखा जाता रहा है।
- परंपरागत सोच और रूढ़िवादी मानसिकता की जकड़न ने बहुत कुछ बदल कर भी कुछ न बदलने जैसे हालात बना रखे हैं। यही वजह है कि घरेलू हिंसा का दंश आज भी समाज के हर वर्ग में देखने को मिलता है। अपने ही घर में महिलाओं के साथ हिंसात्मक व्यवहार करने वाले शिक्षित और अशिक्षित हर तबके के लोग हैं।
- यह अध्ययन बताता है कि पंद्रह से उनचास साल के आयु वर्ग की महिलाओं में से करीब सत्ताईस प्रतिशत महिलाएं तो पंद्रह साल की उम्र से ही देहरी के भीतर की जा रही यह हिंसा बर्दाश्त करती आ रही हैं। आज एक ओर हर क्षेत्र में महिलाएं अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं, तो दूसरी ओर, ऐसे आंकड़े सोचने को विवश करते हैं कि बाहर ही नहीं, घर में भी औरतों को लेकर हमारी मानसिकता में कुछ खास बदलाव नहीं आया है।
- इस सर्वेक्षण के आंकड़े भले ही हमें हैरान और परेशान करें, पर देश की आधी आबादी के हालात की कड़वी सच्चाई को सामने लाने वाले हैं। इससे निकलने वाले संकेत हमारे समाज और परिवार का वह स्याह चेहरा दिखाते हैं जहां स्त्रियां अपने ही आंगन में, अपने ही लोगों की हिंसा झेलने को विवश हैं। मौजूदा दौर में घर के कामकाज के साथ-साथ औरतों को बाहर की जिम्मेदारी तो मिल गई, पर उनके आत्मसम्मान और अस्तित्व का मोल आज भी कुछ नहीं आंका जाता।
- ज्यादातर पुरुष पत्नी पर हाथ उठाना या उसे ताना देना अपना हक समझते हैं। कई बार तो इस हद तक मारपीट की जाती है कि महिला की जान तक चली जाती है। बाहर आपराधिक हालात का सामना करने वाली कितनी ही महिलाओं की गरिमा को उनके घर के भीतर ठेस पहुंचाई जाती है। आए दिन होने वाले ऐसे दुर्व्यवहार से कई बीमारियां जड़ें जमा लेती हैं। महिलाएं भावनात्मक टूटन का शिकार बनती हैं।
- एक गैर-सरकारी संस्था के मुताबिक भारत में केवल 0.1 प्रतिशत महिलाएं ही ऐसी हिंसा के खिलाफ मामला दर्ज करवाने के लिए आगे आती हैं। विडंबना ही है कि हमारे परिवारों में महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को व्यवस्थागत समर्थन भी मिलता है। साथ ही पितृसत्तात्मक सोच इसे और पोषित भी करती है।
- भारत को भले ही एक प्रगतिशील देश माना जाता है, पर समाज में मौजूद परंपरागत सोच और रूढ़िवादी मानसिकता की जकड़न ने बहुत कुछ बदल कर भी कुछ न बदलने जैसे हालात बना रखे हैं। यही वजह है कि घरेलू हिंसा का दंश आज भी समाज के हर वर्ग में देखने को मिलता है। अपने ही घर में महिलाओं के साथ हिंसात्मक व्यवहार करने वाले शिक्षित और अशिक्षित हर तबके के लोग हैं।

- आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और अपने अधिकारों को लेकर सजग महिलाएं भी घरेलू हिंसा का शिकार होती हैं। आमतौर पर हम लोग पढ़ी-लिखी आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिला को हर तरह से सशक्त और सफल मान लेते हैं। लेकिन महिलाओं के सशक्तीकरण का पक्ष मात्र आर्थिक रूप से सशक्त होना ही नहीं है।

घरेलू हिंसा कानून, 2005

- घरेलू दायरे में हिंसा को घरेलू हिंसा कहा जाता है। किसी महिला का शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, मौखिक, मनोवैज्ञानिक या यौन शोषण किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना, जिसके साथ महिला के पारिवारिक सम्बन्ध हैं, घरेलू हिंसा में शामिल है।
- शारीरिक दुर्व्यवहार अर्थात् शारीरिक पीड़ा, अपहानि या जीवन या अंग या स्वास्थ्य को खतरा या लैगिंक दुर्व्यवहार अर्थात् महिला की गरिमा का उल्लंघन, अपमान या तिरस्कार करना या अतिक्रमण करना या मौखिक और भावनात्मक दुर्व्यवहार अर्थात् अपमान, उपहास, गाली देना या आर्थिक दुर्व्यवहार अर्थात् आर्थिक या वित्तीय संसाधनों, जिसकी वह हकदार है, से वंचित करना,मानसिक रूप से परेशान करना ये सभी घरेलू हिंसा कहलाते हैं।
- "घरेलू हिंसा के विरुद्ध महिला संरक्षण अधिनियम की धारा, 2005" में घरेलू हिंसा को परिभाषित किया गया है -"प्रतिवादी का कोई बर्ताव, भूल या किसी और को काम करने के लिए नियुक्त करना, घरेलू हिंसा में माना जाएगा। या
- क्षति पहुँचाना या जख्मी करना या पीड़ित व्यक्ति को स्वास्थ्य, जीवन, अंगों या हित को मानसिक या शारीरिक तौर से खतरे में डालना या ऐसा करने की नीयत रखना और इसमें शारीरिक, यौनिक, मौखिक और भावनात्मक और आर्थिक शोषण शामिल है। या
- दहेज या अन्य संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति की अवैध मांग को पूरा करने के लिए महिला या उसके रिश्तेदारों को मजबूर करने के लिए यातना देना, नुकसान पहुँचाना या जोखिम में डालना ; या
- पीड़ित या उसके निकट सम्बन्धियों पर उपरोक्त वाक्यांश (क) या (ख) में सम्मिलित किसी आचरण के द्वारा दी गयी धमकी का प्रभाव होना; या
- पीड़ित को शारीरिक या मानसिक तौर पर घायल करना या नुकसान पहुँचाना।"
- शिकायत किया गया कोई व्यवहार या आचरण घरेलू हिंसा के दायरे में आता है या नहीं, इसका निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्य विशेष के आधार पर किया जाता है।

व्यथित व्यक्ति

- इस कानून के पूरे लाभ को लेने के लिए यह समझना जरूरी है कि 'व्यथित व्यक्ति' अथवा पीड़ित कौन है। यदि आप एक महिला हैं और कोई व्यक्ति (जिसके साथ आप घरेलू नातेदारी में हैं) आपके प्रति दुर्व्यवहार करता है, तो आप इस अधिनयम के तहत पीड़ित या 'व्यथित व्यक्ति' हैं। चूँकि इस कानून का उद्देश्य महिलाओं को घरेलू नातेदारी से उपजे दुर्व्यवहार से संरक्षित करना है, इसलिए यह समझना भी जरूरी है की घरेलू नातेदारी या सम्बंध क्या हैं और कैसे हो सकते हैं? 'घरेलू नातेदारी' का आशय किन्हीं दो व्यक्तियों के बीच के उन सम्बन्धों से है, जिसमें वे या तो साझी गृहस्थी में एक साथ रहते हैं या पहले कभी रह चुके हैं। इसमें निम्न सम्बंध शामिल हो सकते हैं:
- रक्तजनित सम्बन्ध (जैसे- माँ- बेटा, पिता- पुत्री, भाई- बहन, इत्यादि)
- विवाहजनित सम्बन्ध (जैसे- पति-पत्नी, सास-बहू, ससुर-बहू, देवर-भाभी, ननद परिवार, विधवाओं के सम्बन्ध या विधवा के परिवार के अन्य सदस्यों से सम्बन्ध)
- दत्तकग्रहण/गोदलेने से उपजे सम्बन्ध (जैसे- गोद ली हुई बेटी और पिता)
- शादी जैसे रिश्ते (जैसे- लिव-इन सम्बन्ध, कानूनी तौर पर अमान्य विवाह (उदाहरण के लिए पति ने दूसरी बार शादी की है, अथवा पति और पत्नी रक्त आदि से संबंधित हैं और विवाह इस कारण अवैध है।)
- घरेलू नातेदारी के दायरे में आने के लिए जरूरी नहीं कि दो व्यक्ति वर्तमान में किसी साझा घर में रह रहे हों; मसलन, यदि पति ने पत्नी को अपने घर से निकाल दिया तो यह भी एक घरेलू नातेदारी के दायरे में आएगा।

अधिकार

- इस अधिनियम को लागू करने की जिम्मेदारी जिन अधिकारियों पर है, उनके इस कानून के तहत कुछ कर्तव्य हैं, जैसे- जब किसी पुलिस अधिकारी, संरक्षण अधिकारी, सेवा प्रदाता या मजिस्ट्रेट को घरेलू हिंसा की घटना के बारे में पता चलता है, तो उन्हें पीड़ित महिला को निम्न अधिकारों के बारे में सूचित करना है:-
- पीड़िता इस कानून के तहत किसी भी राहत के लिए आवेदन कर सकती है, जैसे कि - संरक्षण आदेश,आर्थिक राहत,बच्चों के अस्थाई संरक्षण (कस्टडी) का आदेश,निवास आदेश या मुआवजे का आदेश
- पीड़िता आधिकारिक सेवा प्रदाताओं की सहायता ले सकती है।
- पीड़िता संरक्षण अधिकारी से संपर्क कर सकती है।
- पीड़िता निशुल्क कानूनी सहायता की मांग कर सकती है।
- पीड़िता भारतीय दंड संहिता (IPC) के तहत क्रिमिनल याचिका भी दाखिल कर सकती है, इसके तहत प्रतिवादी को तीन साल तक की जेल हो सकती है, इसके तहत पीड़िता को गंभीर शोषण सिद्ध करने की आवश्यकता है।
- इसके अलावा,राज्य द्वारा निर्देशित आश्रय गृहों और अस्पतालों की जिम्मेदारी है कि उन सभी पीड़ितों को रहने के लिए एक सुरक्षित स्थान और चिकित्सा सहायता प्रदान करे, जो उनके पास पहुंचते हैं। पीड़िता सेवा प्रदाता या संरक्षण अधिकारी के माध्यम से इन्हें संपर्क कर सकती है।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने प्लान इंडिया की ओर से तैयार की गई रिपोर्ट जारी की है। इसके मुताबिक भारत में महिलाओं के लिए सबसे सुरक्षित राज्य है?
   (a) केरल
   (b) गोवा
   (c) महाराष्ट्र
   (d) गुजरात

(उत्तर-b)

2. थॉमसन रॉयटर्स फाउंडेशन की औरतों के लिए खतरनाक देशों की रिपोर्ट के आधार में निम्न में से कौन-सा बिन्दु नहीं है?
   (a) समाज में महिलाओं का स्वास्थ्य
   (b) आर्थिक संसाधनों में महिलाओं के साथ भेदभाव
   (c) यौन अपराध के आँकड़े
   (d) रोजगार क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति

(उत्तर-d)

3. हाल ही में जारी हुई एक रिपोर्ट में लैंगिक आधार पर हिंसा को भारत की सबसे बड़ी चिन्ताओं में से एक बताया गया है। यह रिपोर्ट किस संगठन ने जारी की है?
   (a) गैर-सरकारी संगठन 'सहज' और इक्वल मेजर्स- 2030
   (b) न्यूकेयर वेलफेयर ट्रस्ट
   (c) यूएन हैबीटेट
   (d) क्राई संस्था

(उत्तर-a)

4. भारत में शिक्षा के बढ़ते आंकड़ों और सामाजिक बदलाव के दावों के बीच आज भी महिलाओं के घरेलू हिंसा का शिकार होने के क्या कारण हैं?

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन-से भारत के संविधान में शोषण के विरूद्ध अधिकार द्वारा परिकल्पित हैं?
   1. मनुष्यों के व्यापार एवं बंधुआ मजदूरी पर प्रतिबंध
   2. अस्पृश्यता का उन्मूलन
   3. अल्पसंख्यकों के अधिकारों का संरक्षण
   4. फैक्टरी एवं माइनों में बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध

   नीचे दिये गये कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) 1, 2 और 4
   (b) 2, 3 और 4
   (c) 1 और 4
   (d) 1, 2, 3 और 4

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2011, उत्तर-c)

2. प्रथम फैक्टरी अधिनियम ने महिलाओं एवं बच्चों की कार्य अवधि को सीमित करने के लिए स्थानीय सरकारों को अधिकृत किया, यह किसके समय में स्वीकृत किया गया था?
   (a) लॉर्ड लिटन
   (b) लॉर्ड बैंटिक
   (c) लॉर्ड रिपन
   (d) लॉर्ड कैनिंग

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-20?, उत्तर-c)

3. आयु, लिंग तथा धर्म के बंधनों से मुक्त होकर, भारतीय महिलाएँ भारत के स्वाधीनता संग्राम में अग्रणी बनी रहीं। विवेचना कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2013)

4. "महिला संगठनों को लिंग-भेद से मुक्त करने के लिए पुरुषों की सदस्यता को बढ़ावा मिलना चाहिए।" टिप्पणी कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2013)

5. भारत में एक मध्यम-वर्गीय कामकाजी महिला की अवस्थिति को पितृतंत्र (पेट्रिआर्की) किस प्रकार प्रभावित करता है?

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2014)

6. क्या कारण है कि भारत के कुछ अत्यधिक समृद्ध प्रदेशों में महिलाओं के लिए प्रतिकूल स्त्री-अनुपात है ? अपने तर्क पेश कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2014)

GS World Committed To Excellence

स्वतंत्र भारत में नेहरू की भूमिका

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-1 (इतिहास) से संबंधित है।

भारत में राजनेताओं के व्यक्तिगत होते दौर ने सम्पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवस्था को चरमरा दिया है। नेहरू को उनके राजनीतिक दल और व्यक्तिगत व पारिवारिक प्रवृत्तियों से इतर एक लेखकीय और वैज्ञानिक सोच के आधार पर देश निरपेक्ष तौर पर याद कर सकता है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'हिन्दुस्तान', 'जनसत्ता' तथा 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

क्या कभी उनका सही आकलन होगा (हिन्दुस्तान)

हम आज उनकी 129वीं जयंती मना रहे हैं और जब उन्होंने इस दुनिया को अलविदा कहा था, उसे भी आधी सदी से ज्यादा का समय बीत चुका है। लेकिन इस लंबे दौर में देश के पहले प्रधानमंत्री और महात्मा गांधी के बाद उस दौर के निस्संदेह सबसे लोकप्रिय नेता जवाहरलाल नेहरू का शायद ही कभी ईमानदार विश्लेषण सामने आया हो। शुरू के दौर में तो शायद वह आ भी नहीं सकता था। वह परंपरा लंबी चली, जो खुद को नेहरू से जोड़कर देखती थी। इस परंपरा में प्रधानमंत्री के रूप में लाल बहादुर शास्त्री का कार्यकाल भी शामिल है और मनमोहन सिंह का भी। यह आकलन थोड़ा कठिन होगा कि इस लंबे दौर में जो नेतृत्व सत्ता में पहुंचा, उसकी कामयाबी में कितना योगदान खुद उसके राजनीतिक कौशल का था और कितना नेहरू की महिमा का? कितना वे खुद अपने पांवों से आगे बढ़े और कितना उस सम्मोहन ने उन्हें बढ़ाया, जिसका नाम नेहरू था?

आजादी के बाद के अपने पूरे राजनीतिक जीवन में समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया इसी सम्मोहन के पीछे लठ लेकर घूमते रहे। उन्हें यकीन था कि सम्मोहन टूटा, तो सब कुछ बदल जाएगा। फिर जो जमीनी लड़ाई होगी, उसमें आमने-सामने सब बराबर होंगे। वे लगातार बराबरी की इस लड़ाई के लिए जमीन भी तैयार करते रहे। पिछड़ी और निचली जातियों व अल्पसंख्यकों को जोड़कर कांग्रेस को मात देने की जो रणनीति उन्होंने बनाई, वह आज देश के कई हिस्सों में फलीभूत होती दिख रही है। लेकिन लोहिया के समय यह पूरी तरह फलीभूत नहीं हुई, क्योंकि उन्होंने रणनीति तो बना ली थी, लेकिन सम्मोहन को वह कभी नहीं तोड़ सके। नेहरू के बाद लाल बहादुर शास्त्री के समय और इंदिरा गांधी के शुरुआती सत्ताकाल में लोहिया उतना शास्त्री और इंदिरा के खिलाफ खड़े नहीं दिखते थे, जितना कि नेहरू के खिलाफ। लोहिया उस दौर के अकेले नेहरू विरोधी नहीं थे। वे लोग भी थे, जो मानते थे कि आजादी के बाद भारत में धर्मध्वजा की स्थापना होनी चाहिए थी। हर महीने प्रीवी पर्स बटोरने वाले पुराने राजाओं का दल भी था, जो कांग्रेस को किसी भी कीमत पर बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था। वे लोग भी, जो पूरी ईमानदारी से मानते थे कि नेहरू के वामपंथी रुझान ने देश के विकास के कई रास्ते बंद कर दिए हैं और साम्यवादी तो कभी तय ही नहीं कर सके कि नेहरू पूंजीवाद के प्रतिनिधि हैं या नेशनल बुर्जुआ। लेकिन नेहरू के आभामंडल के सामने ये सभी बेबस थे। ये उनकी बेबसी ही थी, जिसने नेहरू के बारे में कई ऐसे किस्से-कहानियां प्रचारित करने के लिए बाध्य किया, जिसे आज की भाषा में फेक न्यूज कहा जाता है।

सम्मोहन के इस दौर में ईमानदार विश्लेषण की उम्मीद भला कैसे की जा सकती थी? लेकिन सम्मोहन इसका अकेला कारण नहीं था। एक

क्या आज आम भारतीय नेहरू को याद कर सकता है? (जनसत्ता)

वर्तमान में भारत की समष्टि से व्यष्टि की ओर सिमटती राजनीति के कारण आम भारतीय तक देश के महापुरुषों को याद करते हुए घबराने लगे हैं। जब भी किसी ऐतिहासिक राजनीतिक भारतीय महापुरुष को लेकर बात करनी होती है, तो सबसे पहले ध्यान जाता है कि कहीं यह विचार विमर्श आपको किसी राजनीतिक पार्टी या विचारधारा विशेष से न जोड़ने लगे। आज 14 नवम्बर को जब कोई लेखक पंडित नेहरू पर लिखना चाहता है, तो लोगों के पूर्वाग्रही दृष्टिकोणों के भय परेशान करने लगते हैं। निरपेक्ष भारत में भी धर्मगत, जातिगत, दलगत, महापुरुषगत सापेक्षताएं कुछ लिखने- कहने के पहले दस बार सोचने को मजबूर करने लगी हैं। निःसंदेह इसके लिए किसी एक व्यक्ति या राजनीतिक दल को दोष नहीं दिया जा सकता। ऐसी भयावहता की परिस्थिति को जन्म देने में सभी की बराबर भूमिका कही जा सकती है।

सत्ताओं के वर्ष और संघर्ष कितने भी रहे हों, परन्तु भारत का अधिकांश समय छींटाकशी और अनर्गल विलापों में ही नष्ट होता रहा है। सम्भवतः होता भी रहेगा। इन सबके बीच जो देश ने सकारात्मक पाया है, वही सही मायने में विकास है। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं और उनकी यथाशक्ति साकारसृजिता व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर करती है। नेहरू को भारत में जो भी स्थान मिला, वो उनकी सृजनशक्ति ही कही जा सकती है। विरोधी यदि यह मानते हैं कि उनकी हठधर्मिता और धनाढ्यता से उन्होंने वह सब पाया, किसी को अपने आगे चलने नहीं दी, तो इसमें भी कहीं न कहीं उस व्यक्ति विशेष की दृढ़ सोच दर्शाती है। नेहरू को प्रेम करने वाले भी इसलिए हैं क्योंकि वे कहीं न कहीं उनकी सोच और समझ का निरादर नहीं कर सकते अर्थात् दोनों ही तथ्य नेहरू को एक सोच का दर्जा देते हैं।

निष्पक्ष तौर पर विश्लेषण करें, तो यह स्पष्ट दिखता है कि स्वतंत्रता के बाद से आधुनिक भारत के निर्माण में नेहरू ने अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग किया। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश में कृषि, उद्योग, शिक्षा, चिकित्सा, विदेश, व्यापार आदि लगभग सभी क्षेत्रों में एक नई विचारधारा के साथ काम को शुरु करने की सोच उनकी लेखकीय और वैज्ञानिक शैली को दर्शाती है। किसी राष्ट्र प्रमुख का किसी क्षेत्र विशेष में सफल होना या न होना उसकी व्यक्तिगतता पर बिल्कुल निर्भर नहीं करता। आज जो लोग किसी भी महापुरुष के बारे में सुन या बोल रहे हैं, वो सिर्फ दस्तावेजों के आधार पर हैं। एक घर में रहकर भी लोग अपने ही सदस्यों के व्यक्तिगत व्यवहार को समझ नहीं पाते, तब दस्तावेजों के

कारण दिल्ली में बैठी सरकार भी थी। इसलिए उन दिनों आकाशवाणी पर, दूरदर्शन पर, तरह-तरह की गोष्ठियों और सम्मेलनों में तमाम विद्वान जब नेहरू का जिक्र करते, तो समझना मुश्किल होता कि जो वे कह रहे हैं, उसे खुद कितना मानते हैं। नेहरू के बारे में उनके मुख से वचन निकल रहे हैं, उसमें कितनी उनकी नेहरू के प्रति समझ है और कितनी शासकों के लिए की गई चापलूसी? उस दौर में 55 की उम्र पार करने वाला कोई भी प्रोफेसर या अफसर जब सार्वजनिक मंच से जवाहरलाल नेहरू की तारीफ करता, तो यही माना जाता कि वह अपने रिटायरमेंट की तैयारी कर रहा है।

यह सब नेहरू की महानता का सही आकलन करने में हमेशा बाधक बना रहा। दुनिया भर में नेहरू की इस बात के लिए तारीफ हुई कि अंग्रेजी शासन से मुक्त होने के बाद नेहरू ने भारत को लगातार लोकतांत्रिक बनाए रखा। नेहरू के सामने यह विकल्प हमेशा खुला था कि वह अपनी लोकप्रियता का फायदा उठाते हुए अनुशासन के नाम पर या विकास के नाम पर कोड़ा उठाते और उसे फटकारने लगते। उस दौर में आजाद हुए दुनिया के तमाम देशों ने यही किया। नेहरू ने उनका यह तर्क कभी नहीं स्वीकारा कि जब सब ठीक हो जाएगा, तो देश में लोकतंत्र स्थापित कर दिया जाएगा। हालांकि, ऐसी तमाम बातों के लिए नेहरू की तारीफ करने वालों के मन में यह शक भी बना ही रहा कि भारत कब तक लोकतांत्रिक रह पाएगा या फिर कब तक एक रह पाएगा? नेहरू की तारीफ में हमारे विद्वान भी इन्हीं सब तर्कों को उठाए घूमते रहे, लेकिन भारत की स्थितियों के हिसाब से घरेलू मुहावरे से नेहरू की मुक्तकंठ तारीफ कभी सुनने को नहीं मिली। नेहरू को वैसी तारीफ कभी नसीब ही नहीं हुई, जैसी आलोचना उन्हें राम मनोहर लोहिया ने दी।

अब हम जहां खड़े हैं, वहां से नेहरू युग बहुत दूर जा चुका है। इस लिहाज से यह उम्मीद की जानी चाहिए कि अब नेहरू का ईमानदार विश्लेषण हो सकता है। लेकिन नहीं, अभी जो दौर है, उसमें नेहरू को उनके समकालीन व्यक्तित्वों के विरोध में खड़ा करके देखे जाने की परिपाटी चल पड़ी है। कभी उन्हें सुभाष चंद्र बोस के खिलाफ खड़ा किया जाता है, कभी सरदार पटेल के और यहां तक कि महात्मा गांधी के खिलाफ भी। हालांकि, इनमें से ज्यादातर का जवाहरलाल नेहरू से कोई बड़ा विरोध था ही नहीं। दशकों तक जो नायक रहा, उसे अब खलनायकत्व दिया जा रहा है। कभी नेहरू वोट मिलने की गारंटी हुआ करते थे, अब नेहरू विरोध में भी वोट बैंक की संभावना खोजी जा रही है।

पर वोटों की इस राजनीति से अलग असल सवाल यह है कि क्या जवाहरलाल नेहरू को कभी ईमानदार विश्लेषण नसीब होगा? कहा जाता है कि किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का सही विश्लेषण उसके सौ साल बाद ही हो सकता है क्योंकि तब तक तकरीबन चार-पांच पीढ़ियां गुजर चुकी होती हैं और नया वर्तमान खुद को इतिहास से पूरी तरह काटकर अलग हो चुका होता है। इस लिहाज से हमें शायद अभी आधी सदी का और इंतजार करना पड़े। पर जिस देश में मुगल काल और उसके बाद का पूरा इतिहास ही वोटों की राजनीति के लिए इस्तेमाल हो रहा हो, वहां आधी सदी के बाद की कोई बात गारंटी के साथ नहीं कही जा सकती। आधार पर किसी की व्यक्तिगतता का विश्लेषण सटीकता के साथ कर पाना बेहद मुश्किल है। फिर नेहरू एक प्रधानमंत्री के नाते पूरे देशरुपी परिवार के ऐसे सदस्य थे, जिनके जितने चाहने वाले रहे होंगे, तो उतने ही नफरत करने वाले भी। ऐसे में नेहरू की व्यक्तिगतता के आधार पर उनको कोसने वाले कितने सही हो सकते हैं, इसमें संदेह है।

भारत में राजनेताओं के व्यक्तिगत होते दौर ने सम्पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवस्था को चरमरा दिया है। भाषाएं और भाव स्तरहीनता की हदों को पार कर रहे हैं। राष्ट्र के उत्तरदायीपूर्ण पदों तक पहुंचने के लिए असत्यता के इस्तेमाल में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं हो रही है। देश के समस्त निष्कर्षों पर नेताओं का खरापन उतर ही नहीं पा रहा है। जिम्मेदार सब हैं, क्योंकि नेहरू जैसी समग्र विद्वसोच का अभाव दिखता है। उच्च महत्वाकांक्षाओं के कारण ही सही (जैसा कि उनके विरोधी आरोप लगाते हैं) स्वयं को सर्वोपरि रखकर भी सबको साथ लेकर चलने की सीख नेहरू के व्यक्तित्व से सीखी जा सकती है क्योंकि जो साथ काम कर रहे थे वे निरामूर्ख तो कदापि नहीं थे कि भेड़चाल में काम करते रहे हों। वो एक यथोचित सामंजस्य का दौर रहा होगा या भारत की मिट्टी की वसुदैव कुटुम्बता की आनुवांशिकताएं रही होंगी, जिसमें नेहरू भी समाए ही रहे होंगे।

आज सही मायनों में नेहरू की उसी सामंजस्यता की बहुत जरुरत है, वसुदैवता परिवारों की इकाई तक समाप्त होती जा रही है, तो राजनीतिक स्तरों पर मिल पाना किसी सपने से कम नहीं। हां, यह बिल्कुल सच है कि भारत ने सपने देखना नेहरू से सीखा, यहां तक कि साकार करना भी सीखा। नेहरू को उनके राजनीतिक दल और व्यक्तिगत व पारिवारिक प्रवृत्तियों से इतर एक लेखकीय और वैज्ञानिक सोच के आधार पर देश निरपेक्ष तौर पर याद कर सकता है। तब शायद किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

पहले नेहरू को जानें, फिर धारणा बनाएं

(नवभारत टाइम्स)

देश के पहले प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नेहरू की बहुचर्चित पुस्तक 'लेटर्स फ्रॉम अ फादर टू हिज डॉटर', जिसका हिन्दी अनुवाद प्रेमचंद ने किया था, को पढ़ने के बाद उन लोगों पर गुस्सा आता है, जो नेहरू के बारे में अनाप-शनाप बकवासबाजी करते रहते हैं। यह पुस्तक पं.नेहरू द्वारा बेटी इंदिरा प्रियदर्शिनी (बाद में गांधी) को लिखे पत्रों पर आधारित है। नेहरू ने जब उक्त खत लिखा था, तब इंदिरा की उम्र महज 10 साल थी। उन्होंने लिखा है कि जब तुम मेरे साथ रहती हो तो अक्सर मुझसे बहुत-सी बातें पूछा करती हो और मैं उनका जवाब देने की कोशिश करता हूं। लेकिन, अब, जब तुम मसूरी में हो और मैं इलाहाबाद में, हम दोनों उस तरह बातचीत नहीं कर सकते। इसलिए मैंने इरादा किया है कि कभी-कभी तुम्हें इस दुनिया की और उन छोटे-बड़े देशों की, जो इस दुनिया में हैं, छोटी-छोटी कथाएं लिखा करूं। तुमने हिंदुस्तान और इंग्लैंड का कुछ हाल इतिहास में पढ़ा है। लेकिन इंग्लैंड केवल एक छोटा-सा टापू है और हिंदुस्तान, जो एक बहुत बड़ा देश है, फिर भी दुनिया का एक छोटा-सा हिस्सा है। अगर तुम्हें इस दुनिया का कुछ हाल जानने का शौक है, तो तुम्हें सब देशों का, और उन सब जातियों का, जो इसमें बसी हुई हैं, ध्यान रखना पड़ेगा, केवल उस एक छोटे-से देश का नहीं, जिसमें तुम पैदा हुई हो। मुझे मालूम है कि इन छोटे-छोटे खतों में बहुत थोड़ी-सी बातें ही बता सकता हूँ। लेकिन मुझे आशा है कि इन थोड़ी-सी बातों को भी तुम शौक से पढ़ोगी और समझोगी कि दुनिया एक है और दूसरे लोग जो इसमें आबाद हैं, हमारे भाई-बहन

GS World Committed To Excellence

हैं। जब तुम बड़ी हो जाओगी तो तुम दुनिया और उसके आदमियों का हाल मोटी-मोटी किताबों में पढ़ोगी। उसमें तुम्हें जितना आनंद मिलेगा, उतना किसी कहानी या उपन्यास में भी न मिला होगा।

इन खतों से पं.नेहरू की रचनाधर्मिता और कल्पनाशीलता की गहराई का अंदाजा लगता है। वो कितने सादगीपूर्ण और ऊंची सोच वाले व्यक्ति थे। चूंकि 14 नवम्बर को उनका जन्मदिन है, इसलिए उनके बारे में दुनिया को बताना चाहता हूं। मेरा मानना है कि नेहरू के बारे में अनाप-शनाप बकवासबाजी करने के बजाय उन्हें समझना चाहिए। नेहरू का व्यक्तित्व अपने आप में किसी ग्रंथ से कम नहीं हैं। जिसने भी नेहरू को ठीक से समझ लिया, उसका जीने का अंदाज बदल जाएगा। इंदिरा को लिखे अपने खत के सहारे नेहरू ने एक प्रसंग में बताया है कि संसार के देशों का इतिहास पढ़ने लगोगी, तो तुम्हें उन बड़े-बड़े कामों का हाल मालूम होगा, जो चीन और मिस्र वालों ने किए थे। उस समय यूरोप के देशों में जंगली जातियां बसती थीं। तुम्हें हिंदुस्तान के उस शानदार जमाने का हाल भी मालूम होगा, जब रामायण और महाभारत लिखे गए और हिंदुस्तान बलवान और धनवान देश था। आज हमारा मुल्क बहुत गरीब है और एक विदेशी जाति हमारे ऊपर राज्य कर रही है। हम अपने ही मुल्क में आजाद नहीं हैं और जो कुछ करना चाहें, नहीं कर सकते। लेकिन यह हाल हमेशा नहीं था और अगर हम पूरी कोशिश करें, तो शायद हमारा देश फिर आजाद हो जाए, जिससे हम गरीबों की दशा सुधार सकें और हिंदुस्तान में रहना उतना ही आरामदेह हो जाए, जितना कि आज यूरोप के कुछ देशों में है।

एक अन्य खत के हिस्से में नेहरू ने इंदिरा को लिखा है कि पहले दुनिया में बहुत नीचे दर्जे के जानवर पैदा हुए और धीरे-धीरे तरक्की करते हुए लाखों बरस में उस सूरत में आए, जो हम आज देखते हैं। हमें एक बड़ी दिलचस्प और जरूरी बात यह भी मालूम हुई कि जानदार हमेशा अपने को आस-पास की चीजों से मिलाने की कोशिश करते गए। इस कोशिश में उनमें नई आदतें पैदा होती गईं और वे ज्यादा ऊंचे दर्जे के जानवर होते गए। हमें यह तब्दीली या तरक्की कई तरह दिखाई देती है।

इसकी मिसाल यह है कि शुरू-शुरू के जानवरों में हड्डियाँ न थीं, लेकिन हड्डियों के बगैर वे बहुत दिनों तक जीवित न रह सकते थे। इसलिए उनमें हड्डियां पैदा हो गईं। सबसे पहले रीढ़ की हड्डी पैदा हुई। इस तरह दो किस्म के जानवर हो गए-हड्डी वाले और बेहड्डी वाले। जिन आदमियों या जानवरों को तुम देखती हो, वे सब हड्डी वाले हैं। एक और मिसाल लो। नीचे दर्जे के जानवरों में मछलियां अंडे दे कर उन्हें छोड़ देती हैं। वे एक साथ हजारों अंडे देती हैं लेकिन उनकी बिल्कुल परवाह नहीं करतीं। मां बच्चों की बिल्कुल खबर नहीं लेती। वह अंडों को छोड़ देती है और उनके पास कभी नहीं आती। इन अंडों की हिफाजत तो कोई करता नहीं, इसलिए ज्यादातर मर जाते हैं। बहुत थोड़े से अंडों से मछलियां निकलती हैं। कितनी जानें बरबाद जाती हैं! लेकिन ऊंचे दर्जे के जानवरों को देखो, तो मालूम होगा कि उनके अंडे या बच्चे कम होते हैं, लेकिन वे उनकी खूब हिफाजत करते हैं। मुर्गी भी अंडे देती है लेकिन वह उन पर बैठती है और उन्हें सेती है। जब बच्चे निकल आते हैं, तो वह कई दिन तक उन्हें चुगाती है। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तब मां उनकी फिक्र छोड़ देती है। इन जानवरों में और उन जानवरों में जो बच्चे को दूध पिलाते हैं, बड़ा फर्क है। यह जानवर अंडे नहीं देते। मां अंडे को अपने अंदर लिए रहती है और पूरे तौर पर बने हुए बच्चे जनती है। जैसे-कुत्ता, बिल्ली या खरगोश। इसके बाद मां अपने बच्चे को दूध पिलाती है, लेकिन इन जानवरों में भी बहुत-से बच्चे बरबाद हो जाते हैं।

आज के हालात में देश को नेहरू जैसे नेता की जरूरत है। पर अफसोस कि यह संभव नहीं है। तकलीफ तो तब होती है, जब नेहरू के पासंग में भी नहीं समाने वाले नेता उन पर कमेंट करते हैं। उन्हें समझना चाहिए कि नेहरू की दूरदृष्टि ही है, जो आज देश इस मुकाम पर खड़ा है। वरना दशा कुछ और ही होती। आज के कुछ नेता नेहरू को अहंकारी और घमंडी तक बताते हैं। लेकिन उन्हें यह नहीं पता कि नेहरू जैसा बनने में उन्हें कितनी मेहनत करनी होगी। नेहरू के सचिव रहे एमओ मथाई अपनी किताब 'रेमिनिसेंसेस ऑफ नेहरू एज' में लिखते हैं कि नेहरू इतने सुसंस्कृत थे कि अहंकारी हो ही नहीं सकते थे। लेकिन ये सही है कि उनमें धीरज नहीं था और वो बेवकूफों को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे।

नेहरू के गुस्से के बाबत पूर्व विदेश मंत्री नटवर सिंह ने एक किस्सा सुनाया था कि एक बार नेहरू उनसे इस बात पर बहुत नाराज हो गए कि उन्होंने उनके नेपाल नरेश को लिखे गए पत्र को विदेश मंत्रालय के सेक्रेट्री जनरल को न दिखा कर अपनी अलमारी में रख लिया था। उस जमाने में नटवर सिंह सेक्रेट्री जनरल के सहायक हुआ करते थे। वो याद करते हैं, "शाम साढ़े छह बजे नेहरू का नेपाल नरेश महेंद्र को लिखा पत्र मेरे पास आया। मैंने सोचा कि सुबह इसे पढ़ूंगा। सुबह मैं सेक्रेट्री जनरल को छोड़ने हवाई अड्डे चला गया, जो सरकारी यात्रा पर मंगोलिया जा रहे थे। वहाँ उनका विमान लेट हो गया।"

अपने जमाने के शानदार संपादक रहे राजेन्द्र माथुर ने 'बगावती शिष्यतंत्र' शीर्षक से लिखा है कि नेहरू जैसा सिपाही यदि गांधी को आजादी के आंदोलन में नहीं मिलता, तो 1927-28 के बाद भारत के नौजवानों को अपनी नाराज और बगावती अदा के बल पर गांधी के सत्याग्रही खेमे में खींच-खींच कर लाने वाला कौन था? नेहरू ने उन सारे नौजवानों को अपने साथ लिया जो गांधी के तौर तरीकों से नाराज थे। उन्होंने 30 की उस पीढ़ी को जबान दी, जो बोल्शेविक क्रांति से प्रभावित होकर कांग्रेस के बेजुबान लोगों को लड़ाकू हथियार बनाना चाहती थी, लेकिन यह सारा काम उन्होंने कांग्रेस की केमिस्ट्री के दायरे में किया और उसका सम्मान करते हुए किया। यदि वे 1932 -33 में सनकी लोहियावादियों की तरह बर्ताव करते और अपनी अलग समाजवादी पार्टी बनाकर गांधी से नाता तोड़ लेते तो सुभाष चन्द्र बोस की तरह कट कर रह जाते। उससे समाजवाद का तो कोई भला होता नहीं। हां, गांधी की फौज जरूर कमजोर हो जाती। गांधी से असहमत होते हुए भी नेहरू ने गांधी के सामने आत्मसमर्पण किया, क्योंकि अपने को समझ न आने वाले जादू के सामने अपने को बिछा देने वाला भारतीय भक्तिभाव नेहरू में शेष था। अपने अक्सर बिगड़ पड़ने वाले पट्ट शिष्य को लाड़ करना गांधी को आता था। बकरी का दूध पीने वाला कोई सेवाग्राम जूनियर गांधी तीस के दशक में ना तो युवक हृदय सम्राट का पद अर्जित कर सकता था। बहरहाल, उक्त सारे प्रसंग इसलिए यहां उद्धृत कर रहा हूं कि नेहरू के बारे में जानने की लोगों में जिज्ञासा बढ़े। मौजूदा राजनीतिज्ञों के बकवासबाजी से नेहरू के प्रति गलत धारणा न बना लें। नेहरू को समझें, जानें।

GS World
Committed To Excellence

सारांश

- वर्तमान में भारत की समष्टि से व्यष्टि की ओर सिमटती राजनीति के कारण आम भारतीय तक देश के महापुरुषों को याद करते हुए घबराने लगे हैं। जब भी किसी ऐतिहासिक राजनीतिक भारतीय महापुरुष को लेकर बात करनी होती है, तो सबसे पहले ध्यान जाता है कि कहीं यह विचार विमर्श आपको किसी राजनीतिक पार्टी या विचारधारा विशेष से न जोड़ने लगे।
- निरपेक्ष भारत में भी धर्मगत, जातिगत, दलगत, महापुरुषगत सापेक्षताएं कुछ लिखने-कहने के पहले दस बार सोचने को मजबूर करने लगी हैं। निःसंदेह इसके लिए किसी एक व्यक्ति या राजनीतिक दल को दोष नहीं दिया जा सकता। ऐसी भयावहता की परिस्थिति को जन्म देने में सभी की बराबर भूमिका कही जा सकती है।
- नेहरू को भारत में जो भी स्थान मिला, वो उनकी सृजनशक्ति ही कही जा सकती है। विरोधी यदि यह मानते हैं कि उनकी हठधर्मिता और धनाढ्यता से उन्होंने वह सब पाया, किसी को अपने आगे चलने नहीं दी, तो इसमें भी कहीं न कहीं उस व्यक्ति विशेष की दृढ़ सोच दर्शाती है। नेहरू को प्रेम करने वाले भी इसलिए हैं क्योंकि वे कहीं न कहीं उनकी सोच और समझ का निरादर नहीं कर सकते।
- निष्पक्ष तौर पर विश्लेषण करें, तो यह स्पष्ट दिखता है कि स्वतंत्रता के बाद से आधुनिक भारत के निर्माण में नेहरू ने अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग किया। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश में कृषि, उद्योग, शिक्षा, चिकित्सा, विदेश, व्यापार आदि लगभग सभी क्षेत्रों में एक नई विचारधारा के साथ काम को शुरु करने की सोच उनकी लेखकीय और वैज्ञानिक शैली को दर्शाती है।
- किसी राष्ट्र प्रमुख का किसी क्षेत्र विशेष में सफल होना या न होना उसकी व्यक्तिगतता पर बिल्कुल निर्भर नहीं करता। आज जो लोग किसी भी महापुरुष के बारे में सुन या बोल रहे हैं, वो सिर्फ दस्तावेजों के आधार पर हैं। एक घर में रहकर भी लोग अपने ही सदस्यों के व्यक्तिगत व्यवहार को समझ नहीं पाते, तब दस्तावेजों के आधार पर किसी की व्यक्तिगतता का विश्लेषण सटीकता के साथ कर पाना बेहद मुश्किल है।
- भारत में राजनेताओं के व्यक्तिगत होते दौर ने सम्पूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवस्था को चरमरा दिया है। भाषाएं और भाव स्तरहीनता की हदों को पार कर रहे हैं। राष्ट्र के उत्तरदायीपूर्ण पदों तक पहुंचने के लिए असत्यता के इस्तेमाल में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं हो रही है।
- इस लंबे दौर में देश के पहले प्रधानमंत्री और महात्मा गांधी के बाद उस दौर के निस्संदेह सबसे लोकप्रिय नेता जवाहरलाल नेहरू का शायद ही कभी ईमानदार विश्लेषण सामने आया हो। शुरू के दौर में तो शायद वह आ भी नहीं सकता था। वह परंपरा लंबी चली, जो खुद को नेहरू से जोड़कर देखती थी।
- दुनिया भर में नेहरू की इस बात के लिए तारीफ हुई कि अंग्रेजी शासन से मुक्त होने के बाद नेहरू ने भारत को लगातार लोकतांत्रिक बनाए रखा। नेहरू के सामने यह विकल्प हमेशा खुला था कि वह अपनी लोकप्रियता का फायदा उठाते हुए अनुशासन के नाम पर या विकास के नाम पर कोड़ा उठाते और उसे फटकारने लगते। उस दौर में आजाद हुए दुनिया के तमाम देशों ने यही किया।
- नेहरू ने उनका यह तर्क कभी नहीं स्वीकारा कि जब सब ठीक हो जाएगा, तो देश में लोकतंत्र स्थापित कर दिया जाएगा। हालांकि ऐसे तमाम बातों के लिए नेहरू की तारीफ करने वालों के मन में यह शक भी बना ही रहा कि भारत कब तक लोकतांत्रिक रह पाएगा या फिर कब तक एक रह पाएगा?
- अब हम जहां खड़े हैं, वहां से नेहरू युग बहुत दूर जा चुका है। इस लिहाज से यह उम्मीद की जानी चाहिए कि अब नेहरू का ईमानदार विश्लेषण हो सकता है। लेकिन नहीं, अभी जो दौर है, उसमें नेहरू को उनके समकालीन व्यक्तित्वों के विरोध में खड़ा करके देखे जाने की परिपाटी चल पड़ी है। कभी उन्हें सुभाष चंद्र बोस के खिलाफ खड़ा किया जाता है, कभी सरदार पटेल के और यहां तक कि महात्मा गांधी के खिलाफ भी। हालांकि, इनमें से ज्यादातर का जवाहरलाल नेहरू से कोई बड़ा विरोध था ही नहीं।
- कहा जाता है कि किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का सही विश्लेषण उसके सौ साल बाद ही हो सकता है, क्योंकि तब तक तकरीबन चार-पांच पीढ़ियां गुजर चुकी होती हैं और नया वर्तमान खुद को इतिहास से पूरी तरह काटकर अलग हो चुका होता है। इस लिहाज से हमें शायद अभी आधी सदी का और इंतजार करना पड़े।
- देश के पहले प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नेहरू की बहुचर्चित पुस्तक 'लेटर्स फ्रॉम अ फादर टू हिज डॉटर', जिसका हिन्दी अनुवाद प्रेमचंद ने किया था, को पढ़ने के बाद उन लोगों पर गुस्सा आता है, जो नेहरू के बारे में अनाप-शनाप बकवासबाजी करते रहते हैं। यह पुस्तक पं.नेहरू द्वारा बेटी इंदिरा प्रियदर्शिनी (बाद में गांधी) को लिखे पत्रों पर आधारित है।
- नेहरू ने जब उक्त खत लिखा था, तब इंदिरा की उम्र महज 10 साल थी। उन्होंने लिखा है कि जब तुम मेरे साथ रहती हो तो अकसर मुझसे बहुत-सी बातें पूछा करती हो और मैं उनका जवाब देने की कोशिश करता हूं। लेकिन, अब, जब तुम मसूरी में हो और मैं इलाहाबाद में, हम दोनों उस तरह बातचीत नहीं कर सकते। इसलिए मैंने इरादा किया है कि कभी-कभी तुम्हें इस दुनिया की और उन छोटे-बड़े देशों की जो इस दुनिया में हैं, छोटी-छोटी कथाएं लिखा करूं।
- नेहरू का व्यक्तित्व अपने आप में किसी ग्रंथ से कम नहीं हैं। जिसने भी नेहरू को ठीक से समझ लिया, उसका जीने का अंदाज बदल जाएगा। इंदिरा को लिखे अपने खत के सहारे नेहरू ने एक प्रसंग में बताया है कि संसार के देशों का इतिहास पढ़ने लगोगी, तो तुम्हें उन बड़े-बड़े कामों का हाल मालूम होगा, जो चीन और मिस्रवालों ने किए थे। उस समय यूरोप के देशों में जंगली जातियां बसती थीं।
- एक अन्य खत के हिस्से में नेहरू ने इंदिरा को लिखा है कि पहले दुनिया में बहुत नीचे दर्जे के जानवर पैदा हुए और धीरे-धीरे तरक्की करते हुए लाखों बरस में उस सूरत में आए, जो हम आज देखते

हैं। हमें एक बड़ी दिलचस्प और जरूरी बात यह भी मालूम हुई कि जानदार हमेशा अपने को आस-पास की चीजों से मिलाने की कोशिश करते गए। इस कोशिश में उनमें नई आदतें पैदा होती गई और वे ज्यादा ऊंचे दर्जे के जानवर होते गए। हमें यह तब्दीली या तरक्की कई तरह दिखाई देती है।

- नेहरू के सचिव रहे एमओ मथाई अपनी किताब 'रेमिनिसेंसेस ऑफ नेहरू एज' में लिखते हैं कि नेहरू इतने सुसंस्कृत थे कि अहंकारी हो ही नहीं सकते थे। लेकिन ये सही है कि उनमें धीरज नहीं था और वो बेवकूफों को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे।
- अपने जमाने के शानदार संपादक रहे राजेन्द्र माथुर ने 'बगावती शिष्यतंत्र' शीर्षक से लिखा है कि नेहरू जैसा सिपाही यदि गांधी को आजादी के आंदोलन में नहीं मिलता, तो 1927-28 के बाद भारत के नौजवानों को अपनी नाराज और बगावती अदा के बल पर गांधी के सत्याग्रही खेमे में खींच-खींच कर लाने वाला कौन था?
- नेहरू ने उन सारे नौजवानों को अपने साथ लिया, जो गांधी के तौर तरीकों से नाराज थे। उन्होंने 30 की उस पीढ़ी को जबान दी, जो बोल्शेविक क्रांति से प्रभावित होकर कांग्रेस के बेजुबान लोगों को लड़ाकू हथियार बनाना चाहती थी, लेकिन यह सारा काम उन्होंने कांग्रेस की केमिस्ट्री के दायरे में किया और उसका सम्मान करते हुए किया।
- यदि वे 1932 -33 में सनकी लोहियावादियों की तरह बर्ताव करते और अपनी अलग समाजवादी पार्टी बनाकर गांधी से नाता तोड़ लेते तो सुभाष चन्द्र बोस की तरह कट कर रह जाते। उससे समाजवाद का तो कोई भला होता नहीं। हां, गांधी की फौज जरूर कमजोर हो जाती। गांधी से असहमत होते हुए भी नेहरू ने गांधी के सामने आत्मसमर्पण किया, क्योंकि अपने को समझ न आने वाले जादू के सामने अपने को बिछा देने वाला भारतीय भक्तिभाव नेहरू में शेष था।

नेहरू

- पंडित जवाहर लाल नेहरू का जन्म 14 नवम्बर, 1889 को इलाहाबाद में हुआ था। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अपने घर पर निजी शिक्षकों से प्राप्त की। पंद्रह साल की उम्र में वे इंग्लैंड चले गए और हैरो में दो साल रहने के बाद उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया, जहाँ से उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान में स्नातक की डिग्री प्राप्त की।
- 1912 में भारत लौटने के बाद वे सीधे राजनीति से जुड़ गए। यहाँ तक कि छात्र जीवन के दौरान भी वे विदेशी हुकूमत के अधीन देशों के स्वतंत्रता संघर्ष में रुचि रखते थे। उन्होंने आयरलैंड में हुए सिनफेन आंदोलन में गहरी रुचि ली थी।
- 1912 में उन्होंने एक प्रतिनिधि के रूप में बांकीपुर सम्मेलन में भाग लिया एवं 1919 में इलाहाबाद के होमरूल लीग के सचिव बने। 1916 में वे महात्मा गांधी से पहली बार मिले जिनसे वे काफी प्रेरित हुए। उन्होंने 1920 में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में पहले किसान मार्च का आयोजन किया। 1920-22 के असहयोग आंदोलन के सिलसिले में उन्हें दो बार जेल भी जाना पड़ा।
- पंडित नेहरू सितंबर 1923 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव बने। उन्होंने 1926 में इटली, स्विट्जरलैंड, इंग्लैंड, बेल्जियम, जर्मनी एवं रूस का दौरा किया। बेल्जियम में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक आधिकारिक प्रतिनिधि के रूप में ब्रुसेल्स में दीन देशों के सम्मेलन में भाग लिया। उन्होंने 1927 में मॉस्को में अक्तूबर में समाजवादी क्रांति की दसवीं वर्षगांठ समारोह में भाग लिया।
- 29 अगस्त, 1928 को उन्होंने सर्वदलीय सम्मेलन में भाग लिया एवं वे उन लोगों में से एक थे, जिन्होंने भारतीय संवैधानिक सुधार की नेहरू रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर किये थे। इस रिपोर्ट का नाम उनके पिता श्री मोतीलाल नेहरू के नाम पर रखा गया था। उसी वर्ष उन्होंने 'भारतीय स्वतंत्रता लीग' की स्थापना की एवं इसके महासचिव बने। इस लीग का मूल उद्देश्य भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से पूर्णतः अलग करना था।
- 1929 में पंडित नेहरू भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन के लाहौर सत्र के अध्यक्ष चुने गए, जिसका मुख्य लक्ष्य देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना था। उन्हें 1930-35 के दौरान नमक सत्याग्रह एवं कांग्रेस के अन्य आंदोलनों के कारण कई बार जेल जाना पड़ा। उन्होंने 14 फरवरी, 1935 को अल्मोड़ा जेल में अपनी 'आत्मकथा' का लेखन कार्य पूर्ण किया।
- दिसम्बर, 1929 में, कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में आयोजित किया गया, जिसमें जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष चुने गए। इसी सत्र के दौरान एक प्रस्ताव भी पारित किया गया, जिसमें 'पूर्ण स्वराज्य' की मांग की गई।
- 26 जनवरी, 1930 को लाहौर में जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्र भारत का झंडा फहराया। गांधी जी ने भी 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन का आह्वान किया। आंदोलन खासा सफल रहा और इसने ब्रिटिश सरकार को प्रमुख राजनीतिक सुधारों की आवश्यकता को स्वीकार करने के लिए मजबूर कर दिया।
- नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए 1936 और 1937 में चुने गए थे। उन्हें 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गिरफ्तार भी किया गया और 1945 में छोड़ दिया गया। 1947 में भारत और पाकिस्तान की आजादी के समय उन्होंने अंग्रेजी सरकार के साथ हुई वार्ताओं में महत्त्वपूर्ण भागीदारी की।
- जवाहरलाल नेहरू ने आधुनिक भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने योजना आयोग का गठन किया, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को प्रोत्साहित किया और तीन लगातार पंचवर्षीय योजनाओं का शुभारंभ किया। उनकी नीतियों के कारण देश में कृषि और उद्योग का एक नया युग शुरु हुआ। नेहरू ने भारत की विदेश नीति के विकास में एक प्रमुख भूमिका निभायी।
- इंदिरा गांधी को काल्पनिक पत्र लिखने के बहाने उन्होंने विश्व इतिहास का अध्याय-दर-अध्याय लिख डाला। ये पत्र वास्तव में कभी भेजे नहीं गये, परंतु इससे विश्व इतिहास की झलक जैसा सहज संप्रेष्य तथा सुसंबद्ध ग्रंथ सहज ही तैयार हो गया। भारत की खोज (डिस्कवरी ऑफ इंडिया) ने लोकप्रियता के अलग प्रतिमान रचे हैं, जिस पर आधारित भारत एक खोज नाम से एक उत्तम धारावाहिक का निर्माण भी हुआ है।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. जवाहर लाल नेहरू ने निम्न में से किस जेल में 1935 में अपनी आत्मकथा लिखने का कार्य पूर्ण किया?
   (a) नैनीताल जेल
   (b) अल्मोड़ा जेल
   (c) बांकीपुर जेल
   (d) अहमदाबाद जेल

(उत्तर-b)

2. जवाहर लाल नेहरू के संदर्भ में निम्न में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   1. भारत छोड़ो आंदोलन में उन्हें 8 अगस्त, 1942 को गिरफ्तार कर मांडले जेल भेज दिया गया।
   2. 1929 में लाहौर सत्र के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये।

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

(उत्तर-b)

3. अक्टूबर, 1927 को जवाहरलाल नेहरू ने किस देश की क्रांति की दसवीं वर्षगाँठ में हिस्सा लिया?
   (a) जापान (b) बुल्गारिया
   (c) सोवियत संघ (d) आयरलैंड

(उत्तर-c)

4. जवाहरलाल नेहरू के विषय में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए?
   1. वर्ष 1962 में भारत-चीन युद्ध के दौरान नेहरू भारत के प्रधानमंत्री थे और चाउ-एन-लाई चीनी समकक्ष थे।
   2. गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत की नींव स्थापित करने में नेहरू का विशेष योगदान है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

(उत्तर-c)

5. स्वतंत्रता के बाद से आधुनिक भारत के निर्माण में नेहरू ने अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग किस प्रकार से इसके विकास के लिए किया?

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वर्ष 1929 में लाहौर सम्मेलन, जिसमें अंग्रेजों से पूर्ण स्वतंत्रता पाने का संकल्प अंगीकृत किया गया था, किसकी अध्यक्षता में हुआ था?
   (a) बाल गंगाधर तिलक
   (b) गोपाल कृष्ण गोखले
   (c) जवाहर लाल नेहरू
   (d) मोतीलाल नेहरू

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2006, उत्तर-c)

2. निम्न में से कौन फरवरी, 1918 में स्थापित यू.पी. किसान सभा की स्थापना से सम्बद्ध नहीं था?
   (a) इन्द्र नारायण द्विवेदी
   (b) गौरीशंकर मिश्र
   (c) जवाहर लाल नेहरू
   (d) मदनमोहन मालवीय

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2005, उत्तर-c)

3. 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में मूल अधिकारों पर प्रस्ताव का प्रारूप निम्नलिखित में से किसने बनाया?
   (a) डॉ. बी.आर. अम्बेडकर
   (b) पंडित जवाहरलाल नेहरू
   (c) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
   (d) सरदार वल्लभभाई पटेल

(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2005, उत्तर-b)

4. पिछली शताब्दी के तीसरे दशक से भारतीय स्वतंत्रता की स्वप्न दृष्टि के साथ संबद्ध हो गए नए उद्देश्यों के महत्व को उजागर कीजिए।

(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2017)

GS World Committed To Excellence

भारतीय राजनीति और राम मंदिर विवाद

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (संविधान एवं राजव्यवस्था) से संबंधित है।

आने वाले दिनों में अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के लिए कानून बनाने या फिर अध्यादेश लाने की मांग और प्रबल होने वाली है, तब फिर सरकार की ओर से यह देखा ही जाना चाहिए कि क्या किसी विधिसम्मत उपाय से राम मंदिर निर्माण की राह सुनिश्चित करना संभव है? इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'जनसत्ता', 'नवभारत टाइम्स' तथा 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

मंदिर निर्माण की अड़चनें (जनसत्ता)

इन दिनों सत्तापक्ष से जुड़े कुछ नेता निरंतर यह प्रचार कर रहे हैं कि अयोध्या में राम मंदिर निर्माण का शुभारंभ छह दिसंबर के पूर्व आरंभ हो जाएगा। इससे पहले दिल्ली में विश्व हिंदू परिषद् की बैठक में भी यह बात उठी थी कि इस वक्त जब केंद्र और पंद्रह राज्यों में भाजपा की सरकारें हैं, ऐसी स्थिति में भी अगर मंदिर निर्माण नहीं आरंभ हो सका तो रामभक्तों में अविश्वास पनपेगा और इसका प्रभाव 2019 के लोकसभा चुनावों में पड़े बिना नहीं रहेगा। विश्व हिंदू परिषद् की ओर से निरंतर यह प्रचार चल रहा है कि अयोध्या में राममंदिर निर्माण अब स्वप्न नहीं, बल्कि जल्दी ही यह हकीकत में बदल जाएगा। उस रास्ते की सभी बाधाएं समाप्त हो चुकी हैं।

विश्व हिंदू परिषद् की ओर से राम मंदिर आंदोलन के दौरान निरंतर यह प्रचार किया जा रहा था कि इसका निर्धारण करने में कोई अदालत सक्षम नहीं है। यह तो संतों के निर्देश और इनके सुझावों के अनुसार होगा। मगर कठिनाई यह थी कि भारत के संविधान में संतों को न तो कोई विशेषाधिकार है, न वे अपनी इच्छा और अपेक्षा के अनुसार कोई ऐसा कार्य करने में सक्षम हैं, जो विधि सम्मत हो। यही कारण है कि देश के कम से कम सात विशिष्ट लोग, जो अपने को ईश्वर का रूप कहते थे, उनको मानने वालों की संख्या भी करोड़ों में कही जाती है, जिनकी आरती उतारी जाती थी, जिन्हें मनुष्य कोटि के बजाय विशिष्ट कोटि में गिना जाता है, वे आज अदालत के आदेशों से जेल की सजाएं भुगत रहे हैं। कइयों को तो जमानत तक नहीं मिली। यह इस धारणा को समाप्त करता है कि ये साधु-संन्यासी कानून से अधिक शक्तिशाली हैं।

जहां तक अयोध्या में राम मंदिर निर्माण का प्रश्न है, तो रामभक्तों का एक बड़ा समुदाय है, जिसकी आकांक्षा राम की जन्मस्थली पर मंदिर बनाने की है। यह समुदाय करोड़ों नहीं, अरबों रुपए की सहायता करने के लिए भी तत्पर है। जिस स्थल पर मंदिर की आवश्यकता बताई जाती है, वह बाबरी मस्जिद के बजाय रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवादित स्थल के रूप में प्रचारित किया जाता है। वह स्थल 6 दिसंबर, 1992 को विश्व हिंदू परिषद् की जुटाई भीड़ द्वारा ध्वस्त किया जा चुका है। लेकिन ध्वस्त स्थल पर मंदिर बन सकता है, अगर यह मान्यता सही होती, तो पिछले छब्बीस वर्ष से इसकी प्रतीक्षा न करनी पड़ी होती।

आज भी आंदोलन के कई विशिष्ट नेताओं, फैजाबाद के जिलाधिकारी और पुलिस कप्तान पर आपराधिक मामला न्यायालय में विचाराधीन है। सर्वोच्च न्यायालय भी इसका शीघ्र निपटारा चाहता है, लेकिन मंदिर निर्माण में लखनऊ उच्च न्यायालय के तीन जजों का फैसला, जिसकी अपील उन तीनों पक्षों ने दायर की है, जिनके पक्ष में विवादित स्थल को तीन भागों में बंटवारे का फैसला हुआ था, पर सुनवाई आरंभ हो गई है। इसमें यह

मंदिर पर घमासान (जनसत्ता)

शिवसेना प्रमुख ने अयोध्या में बेशक कहा कि वे मंदिर मामले में कोई राजनीति नहीं कर रहे, पर उनके अचानक सक्रिय होने से साफ है कि उन्होंने इसे भाजपा के साथ जोर आजमाइश के मौके के तौर पर चुना है। भाजपा के एक विधायक ने उद्धव ठाकरे पर निशाना भी साधा कि वह महाराष्ट्र में उत्तर भारतीयों पर हमले कर अपनी राजनीति करते आए हैं, अब उन्हें उत्तर भारत के मसले में अचानक दिलचस्पी कैसे पैदा हो गई।

अयोध्या में राम मंदिर बनाने को लेकर केंद्र सरकार पर दबाव बढ़ता जा रहा है। अदालत में यह मामला अभी लंबा खिंचता नजर आ रहा है, इसलिए पहले विश्व हिंदू परिषद् ने दबाव बनाना शुरू किया कि मंदिर बनाने के लिए सरकार कानून बनाए या अध्यादेश जारी करे। पर भारतीय जनता पार्टी शुरू से कहती आ रही है कि वह संविधान में विश्वास करती है, इसलिए वह न्यायालय के आदेश की प्रतीक्षा कर रही है। पिछले आम चुनाव में भाजपा ने वादा किया था कि अगर उसकी सरकार बनी, तो वह राम मंदिर का निर्माण कराएगी। मगर अब इस सरकार का कार्यकाल पूरा होने को है और मंदिर निर्माण के मामले में कोई गति नहीं आ पाई है। इसलिए विहिप का कहना है कि अब इस मामले में लोगों का धैर्य टूट रहा है, चाहे जैसे हो वह मंदिर बनवा कर रहेगी। इस तरह विहिप का दबाव तो था ही, शिवसेना ने भी तीखे प्रहार शुरू कर दिए। वह भी अपने समर्थकों के साथ विहिप की बुलाई धर्म सभा में शिरकत करने अयोध्या जा पहुंची। शिवसेना प्रमुख उद्धव ठाकरे ने धमकी भी दे डाली कि अगर मंदिर नहीं बना, तो सरकार भी नहीं बनेगी।

अयोध्या की धर्म सभा ने केंद्र सरकार के सामने धर्मसंकट खड़ा कर दिया है। मंदिर निर्माण के लिए कानून बनाने की प्रक्रिया जटिल है और वह इतनी जल्दी संभव नहीं है। फिर अगर वह अध्यादेश जारी करती है, तो उसका कानून पर भरोसे वाला तर्क झूठा साबित होगा। इससे देश में नए तरह का विवाद पैदा होने का खतरा भी है। हालांकि, अदालत ने कहा था कि अगर संत समाज और सभी धार्मिक-राजनीतिक दलों के साथ मिल-बैठ कर कोई सर्वमान्य हल निकाल लिया जाए, तो मंदिर निर्माण की राह सुगम हो जाएगी। मगर विहिप खुद कुछ ऐसे मसलों को तूल दे रही है, जो अड़चन पैदा कर सकते हैं। मसलन, वह पूरी भूमि पर मंदिर निर्माण कराना चाहती है, जबकि उसका कुछ हिस्सा बाबरी मस्जिद के दावेदारों को भी देने का निर्णय हुआ था। इस आंदोलन में नई-नई शामिल हुई शिवसेना ने भी विहिप का ही रुख अपनाया हुआ है। इस तरह यह मामला आसान नहीं लगता। उधर उत्तर प्रदेश सरकार ने राम की मूर्ति लगाने का नक्शा जारी किया है, जिससे जाहिर है कि वह फिलहाल कोई विवाद नहीं पैदा करना चाहती। पर इसे पूरे प्रकरण में शिवसेना के रुख से एक राजनीतिक कोण जरूर जुड़ गया है।

Committed To Excellence

स्पष्ट कर दिया गया है कि यह मामला किसी आस्था, विश्वास, धर्म और मान्यता पर नहीं, बल्कि भूमि कानून के अनुसार ही चलेगा।

इसलिए इस प्रकरण में यह सवाल उठता है कि जब लाहौर में जिस मस्जिद को गिरा कर सिखों ने गुरुद्वारा बनाया था, वह पाकिस्तान के इस्लामी शासन के बावजूद अभी तक बदला नहीं जा सका, बल्कि गुरुद्वारा यथावत विद्यमान है। भारत और पाकिस्तान में बजाब्ता दीवानी वही लागू है, जिसे अंग्रेजों ने 1864 में बना कर लागू किया था। अंग्रेजों के काल के दीवानी मामले में बारह वर्षों की वह सीमा भी लागू है, जो कब्जेदार को स्वामित्व का अधिकार प्रदान करती है। इसलिए इसे इस प्रसंग से अलग नहीं किया जा सकता।

इस प्रसंग में बाबरी मस्जिद के ध्वस्त हो जाने के बाद 7 जनवरी, 1993 को अयोध्या विशिष्ट क्षेत्र भूमि अधिग्रहण अध्यादेश आया था। बाद में इसे संसद ने कानून के रूप में परिवर्तित कर दिया था। उसके बाद 24 अक्टूबर, 1994 को संविधान पीठ के पांच सदस्यों ने इस स्थल पर राममंदिर, मस्जिद, पुस्तकालय, वाचनालय, संग्रहालय और तीर्थयात्रियों की सुविधा वाले स्थानों का निर्माण करने को कहा है। संविधान पीठ ने इस अध्यादेश को वैध माना है और मुस्लिमों का यह कथन कि मस्जिद धार्मिक स्थल है, जिसका अधिग्रहण नहीं हो सकता, अस्वीकार कर दिया है।

मगर संसद के कानून के बावजूद उसके प्रावधानों के आधार पर निर्धारण इसलिए नहीं हो पाया, क्योंकि संविधान पीठ ने इस मामले में चल रहे मुकदमे को समाप्त करने के लिए जो व्यवस्था की थी, उसे न्यायालय ने संविधानेतर मान लिया है। इसी मामले में यह भी व्यवस्था दी गई है कि जो पक्ष स्वामित्व वाला मुकदमा जीते, उसे बड़ा भाग और जो हारे उसे छोटा भाग दिया जाए। पर विश्व हिंदू परिषद् के लोग निरंतर यह प्रचार करते हैं कि अयोध्या में मस्जिद नहीं बनने देंगे। अब सवाल उठता है कि क्या यह देश और संविधान उनकी इच्छाओं के अनुसार चलेगा या निर्धारित प्रावधानों के?

इस विचाराधीन अपील पर तीन न्यायाधीशों की पीठ सुनवाई कर रही है, जो संविधान पीठ के किसी निर्णय को समाप्त करने में सक्षम नहीं है। अब विश्व हिंदू परिषद् की ओर से यह आवाज उठाई जा रही है कि संसद प्रस्ताव पारित करके मंदिर निर्माण आरंभ कराए। इस रास्ते में सबसे बड़ी बाधा 1993 में बना कानून है। एक ही विषय पर संसद दो व्यवस्थाएं नहीं कर सकती। संसद अपनी शक्ति का प्रयोग करके किसी कानून को समाप्त तो कर सकती है, लेकिन किसी अध्यादेश से नहीं। इसलिए क्या 6 दिसंबर से पूर्व इन बाधाओं से मुक्ति के लिए कदम उठाए जा सकते हैं? क्या प्रधानमंत्री देश में यह संदेश देने के पक्ष में हैं कि देश के सर्वोच्च न्यायालय, जिसमें यह प्रसंग विचाराधीन है, उस पर उनका विश्वास नहीं है?

साथ ही अगर संसद कोई कानून बनाएगी भी तो उसकी वैधता पर अंतिम निर्णय तो सर्वोच्च न्यायालय के अधीन ही होगा कि कहीं वह संविधानेतर प्रयत्न तो नहीं? या वह संविधान के अनुच्छेद-21 और 25 के प्रावधानों के विपरीत तो नहीं? इस प्रकार राम मंदिर का निर्माण भीड़ जुटा कर नहीं, निर्णयों द्वारा ही संभव है, जिसमें लंबा समय भी लगेगा। इसलिए राम मंदिर निर्माण को लेकर इन दिनों चलाए जा रहे प्रचार से यह संदेश जाता है कि सरकार निर्माण के बजाय इस मामले को गरम बनाए रखने की दिशा में ही प्रयत्न कर रही है।

पहले खुद में राम जगाओ, फिर अयोध्या में मंदिर बनाओ (नवभारत टाइम्स)

25 नवंबर 2018, यह एक ऐसी तिथि है, जो इतिहास में दर्ज होगी। 1992 में बाबरी विध्वंस के बाद पहली बार अयोध्या में लाखों की 'भीड़' जुट रही है। इस भीड़ का मकसद क्या है? क्या यह भीड़ वास्तविक

शिवसेना प्रमुख ने अयोध्या में बेशक कहा कि वे मंदिर मामले में कोई राजनीति नहीं कर रहे, पर उनके अचानक सक्रिय होने से साफ है कि उन्होंने इसे भाजपा के साथ जोर आजमाइश के मौके के तौर पर चुना है। भाजपा के एक विधायक ने उद्धव ठाकरे पर निशाना भी साधा कि वह महाराष्ट्र में उत्तर भारतीयों पर हमले कर अपनी राजनीति करते आए हैं, अब उन्हें उत्तर भारत के मसले में अचानक दिलचस्पी कैसे पैदा हो गई। दरअसल, जबसे महाराष्ट्र में भाजपा ने शिवसेना को अलग-थलग कर दिया है, वह अब तक अपनी चोट सहला रही है। जब भी मौका मिलता है, वह भाजपा के खिलाफ खड़ी दिखती है। अयोध्या में राम मंदिर मुद्दे को एक तरह से लपक लेने की उसकी कोशिश भी इसी का नतीजा है। हालांकि राम मंदिर निर्माण पर उसके रुख का शायद ही बहुत असर पड़े, पर सरकार को सोचने पर मजबूर जरूर किया है।

अयोध्या विवाद की सुनवाई टलने से साधु और संतों का सब्र का बांध धर्म संसद पर जाकर टूटा

(दैनिक जागरण)

अयोध्या में राम मंदिर निर्माण की मांग और तेज होने पर आश्चर्य नहीं। ऐसा होना तभी तय हो गया था जब सुप्रीम कोर्ट ने इस बहुप्रतीक्षित मामले की सुनवाई टालने का फैसला किया था। यह फैसला इसलिए कहीं अधिक निराशाजनक था, क्योंकि यह ठीक उस समय आया जब पूरा देश यह आशा कर रहा था कि अब इस मसले के निपटारे में अधिक देर नहीं होगी। दुर्भाग्य से जब यह अपेक्षित था कि अयोध्या विवाद की सुनवाई दिन-प्रतिदिन होगी, तब सुप्रीम कोर्ट से यह सुनने को मिला कि इस प्रकरण पर गठित होने वाली नई पीठ ही यह तय करेगी कि सुनवाई अगले साल जनवरी, फरवरी, मार्च या फिर अप्रैल में होगी। यदि आम जनता और खासकर अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के आकांक्षी लोगों की ओर से इसे न्याय में देरी के रूप में देखा गया, तो इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।

अयोध्या विवाद की सुनवाई टलना न्याय में देरी का उदाहरण ही अधिक बना। इसलिए और भी, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट 2011 के बाद से इस मामले की सुनवाई का अवसर नहीं निकाल सका। एक ऐसे समय जब इसके कोई ठोस संकेत नहीं कि अयोध्या विवाद का निपटारा कब होगा, तब लोगों का और अधीर होना स्वाभाविक है। इसी अधीरता की अभिव्यक्ति गत दिवस अयोध्या में आयोजित धर्म संसद में हुई और साथ ही आरएसएस प्रमुख मोहन भागवत के संबोधन में भी।

अब जब यह साफ दिख रहा है कि आने वाले दिनों में अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के लिए कानून बनाने या फिर अध्यादेश लाने की मांग और प्रबल होने वाली है तब फिर सरकार की ओर से यह देखा ही जाना चाहिए कि क्या किसी विधिसम्मत उपाय से राम मंदिर निर्माण की राह सुनिश्चित करना संभव है? उसकी ओर से कोई न कोई उपक्रम इसलिए भी किया जाना चाहिए, क्योंकि बीते चार वर्षों में उसने इस आस में कोई पहल नहीं की कि सुप्रीम कोर्ट अपना काम करेगा। चूंकि यह काम टल गया इसलिए सरकार को आगे आकर उन संभावनाओं को टटोलना चाहिए, जिनकी चर्चा हो रही है।

आखिर यह एक तथ्य है कि अयोध्या की अधिग्रहीत भूमि का स्वामित्व उसके ही पास है। इसी तरह यह केवल मान्यता मात्र नहीं कि अयोध्या राम की है, बल्कि इसके ऐतिहासिक और पुरातात्विक प्रमाण भी उपलब्ध हैं कि विवादित स्थल पर एक मंदिर के ऊपर ही मस्जिद बनाई गई थी। इससे बड़ी विडंबना और कोई नहीं हो सकती कि तमाम प्रमाणों के बाद भी देश की अस्मिता और सांस्कृतिक चेतना के प्रेरणास्रोत भगवान राम के

रामभक्तों की है? क्या इस भीड़ के जुटने से श्रीराम मंदिर के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होगा? ऐसे कई सवाल पिछले कई दिनों से मन में उठ रहे थे, लेकिन कल एक मित्र से बात करने के दौरान इस श्रृंखला में एक सवाल और जुड़ गया। दरअसल, मेरे उस मित्र का कहना था कि यह भीड़ बीजेपी सरकार की नाकामी को दर्शाती है कि किस तरह से बीजेपी सरकार लोगों को रोजगार देने में नाकाम हुई है। तो क्या सच में अयोध्या में जो भीड़ दिख रही है, वह बेरोजगारों की भीड़ है, जो नेताओं की रैलियों की तरह पैसे और विशिष्ट रासायनिक पदार्थों के पैकेट लेकर आ जाती है?

रविवार को होने वाले कार्यक्रम में मेरे बहुत से परिचित अयोध्या जा रहे हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जो इस बात से खुश हैं कि उन्हें छुट्टी नहीं लेनी पड़ेगी क्योंकि रविवार को उनकी छुट्टी रहती है, कुछ ऐसे हैं जो अपना काम छोड़कर अयोध्या जा रहे हैं, कुछ छात्र भी हैं जो पढ़ाई छोड़कर जा रहे हैं, लेकिन साथ ही बड़ी संख्या में ऐसे लोग भी हैं जो भगवा गमछा डालकर अपने स्थानीय नेता के भक्ति स्वरूप 'रामभक्ति' की ओर अग्रसर हो रहे हैं। कारण कुछ भी हो, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अयोध्या जाने वाले अधिकांश लोगों के मानस के केन्द्र में श्रीराम ही हैं।

1992 के आंदोलन को मैंने नहीं देखा, लेकिन जब से समझने वाला हुआ तब से श्रीराम के बारे में बहुत कुछ सुना और पढ़ा है। अयोध्या में मंदिर निर्माण को लेकर मेरा स्पष्ट मत है कि वहां मंदिर ही बनना चाहिए और साथ में आस-पास कहीं किसी जगह पर मस्जिद भी बननी चाहिए, लेकिन अगर कोई इस बात पर रोता है कि 'बाबरी मस्जिद' को गिराया जाना गलत था, तो उसे गुलामी की मानसिकता से ग्रसित मूर्ख से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। एक लुटेरे, आक्रांता और भारतीय सहिष्णुता के विनाशक के नाम पर बनी एक इमारत को गिराया ही जाना चाहिए। एक कदम आगे बढ़कर कहूं तो भारतीय परंपरा के विध्वंसक रावण के नाम पर यदि कोई इमारत बनती है तो ब्राह्मण और भारतीय होने के बावजूद उसका विध्वंस किया जाना पूरी तरह से न्यायसंगत है। अरे मस्जिद तो छोड़िए, बाबर जैसों के नाम पर तो इस देश में एक शौचालय भी नहीं हो सकता।

मैं चाहता हूं कि इस देश में रामराज्य आए, यहां मंदिर भी बनना चाहिए लेकिन उसके बनने से रामराज्य नहीं आएगा। जिस राम ने अपने पिता की आज्ञा का अनुपालन करने के लिए राज सिंहासन को ठोकर मार दी, उस राम के मंदिर के लिए तो हम खड़े हो गए, लेकिन अपने मां-बाप को वृद्धाश्रम में छोड़ आए। अरे अगर हमने श्रीराम मंदिर के लिए बीसों किलोमीटर की पदयात्रा निकालने की जगह दो कदम चलकर श्रीराम के चरित्र को अपनाया होता, तो ऐसा न होता कि कोई मां मरने के बाद चार दिन तक अपने घर में पड़ी रहती और बेटे को उसकी खबर ही न होती।

किस सरकार से राम मंदिर की उम्मीद करके बैठे हैं हम? राम ने तो जन्मभूमि को, अपनी मातृभूमि को स्वर्ग से भी ऊपर बताया था और यह सरकार तो अपनी मातृभूमि के विरोध में नारे लगाने वाले चंद लफंगे देशद्रोहियों को तीन साल बाद भी नहीं पकड़ पाई है। राम ने तो शबरी के जूठे बेर खाए थे, राम ने तो अपने राज्याभिषेक के दौरान भी भरत से सिर्फ एक ही अतिथि को लाने का आग्रह किया था, और वह थे निषादराज, लेकिन हम क्या कर रहे हैं? हमारे देश में तो अगर कोई पिछड़ी जाति का बस कंडक्टर गांव में रात बिता लेता है, तो उसे सामाजिक जुर्माना देना पड़ता है। हमें राम को जीना पड़ेगा, अगर श्रीराम को जिएंगे नहीं, तो विश्वास मानिए, हमें श्रीराम मंदिर की बात करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।

राम मंदिर के भव्य निर्माण की बात करने से पहले हमें यह समझना होगा कि राम कौन हैं, राम कोई और नहीं हमारे अंदर विद्यमान हैं। जब हमारी आंखों के सामने कुछ गलत हो रहा हो और हम उसके खिलाफ संघर्ष करें तो इसका अर्थ है कि हमारे अंदर रामत्व शेष है, और जब हम स्वयं कुछ गलत करें अथवा गलत का विरोध न करें तो समझ लेना चाहिए कि ईश्वर द्वारा आशीर्वाद स्वरूप दिए गए रामत्व को हम सहेज नहीं पा रहे हैं। नाम का मंदिर उनके ही जन्मस्थल पर बनने में अनावश्यक देर हो रही है।

अयोध्या में राम मंदिर निर्माण की पहल इसलिए भी होनी चाहिए, क्योंकि अब वे अनेक राजनीतिक दल भी विरोध के अपने सुरों को भूलकर यह पूछ रहे हैं कि मंदिर कब बनेगा? यह सही है कि राम मंदिर निर्माण की संभावित पहल को अदालत में चुनौती दी जा सकती है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सरकार अपने दायित्वों का निर्वहन करने से बचे। यह ठीक नहीं कि अयोध्या में राम मंदिर निर्माण की बरसों पुरानी मांग को पूरा करने के लिए कोई भी अपने दायित्वों का पालन करते न दिखे।

अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के प्रति प्रतिबद्धता का प्रदर्शन मर्यादित ढंग से होना चाहिए (दैनिक जागरण)

अयोध्या पहुंचे शिवसेना प्रमुख उद्धव ठाकरे ने राम मंदिर निर्माण के प्रति प्रतिबद्धता का प्रदर्शन करते हुए भले ही यह कहा हो कि वह किसी तरह का कोई श्रेय लेने नहीं आए हैं, लेकिन सच यह है कि वह ठीक यही करने गए थे। चूंकि उनका इरादा यह प्रकट करना भी था कि वह मोदी सरकार के मुकाबले राम मंदिर निर्माण के प्रति कहीं अधिक प्रतिबद्ध हैं। इसीलिए उन्होंने मंदिर निर्माण की तिथि बताने का आग्रह किया। अच्छा होता कि इसके लिए वह सुप्रीम कोर्ट जाते। दरअसल, यही काम उन्हें भी करना चाहिए, जो मोदी सरकार पर कटाक्ष करते हुए यह सवाल उछाल रहे हैं कि अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण कब होगा? ऐसे कटाक्ष करने वाले वही लोग हैं, जो भाजपा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिंदू परिषद् आदि की राम मंदिर निर्माण संबंधी मांग के विरोध में यह कहकर खड़े होते रहे हैं कि माहौल बिगाड़ने और समाज का ध्रुवीकरण करने की राजनीति की जा रही है।

क्या यह विचित्र नहीं कि आज कांग्रेस के नेता यह तो कह रहे हैं कि अयोध्या में मंदिर का निर्माण कांग्रेसी प्रधानमंत्री ही कराएगा, लेकिन इसके लिए ईमानदारी से कोई कोशिश करने से बच रहे कि अयोध्या विवाद का शीघ्र समाधान हो। आखिर इसे कौन भूल सकता है कि सुप्रीम कोर्ट में एक कांग्रेसी नेता ही यह दलील दे रहे थे कि अयोध्या विवाद की सुनवाई अगले आम चुनाव के बाद होनी चाहिए। यदि अपेक्षित समय पर अयोध्या विवाद की सुनवाई शुरू नहीं हो सकी, तो वैसे ही लोगों के कारण जो इस विवाद का समाधान नहीं चाहते। कम से कम ऐसे लोगों को तो जख्मों पर नमक छिड़कने जैसा यह सवाल पूछने का कोई अधिकार नहीं कि अयोध्या में राम मंदिर कब बनेगा?

इसमें कोई संशय नहीं कि अयोध्या मसले को सांप्रदायिक चश्मे से देखने और उसे हिंदू-मुस्लिम का सवाल बनाने वालों के कारण ही इस विवाद के समाधान में जरूरत से ज्यादा देर हो रही है। इस देरी के कारण अयोध्या में राम मंदिर निर्माण की बाट जोह रहे जनमानस की बेचैनी बढ़ी है, लेकिन यह भी सही है कि वर्तमान परिस्थितियों में थोड़ी और प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं, क्योंकि अध्यादेश या फिर कानून के जरिये मंदिर निर्माण की कोई भी कोशिश उस अदालत के दरवाजे ही पहुंचेगी, जिसने जनवरी में इस मामले की सुनवाई करने को कहा है।

राम मंदिर निर्माण के प्रति संकल्प व्यक्त किया ही जाना चाहिए, लेकिन इस संकल्प को मजबूती तब मिलेगी, जब उसे उन मूल्यों और मर्यादा से सुशोभित किया जाए जिनके लिए भगवान राम जाने जाते हैं और जिसके चलते वह मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। राम के नाम पर किया जाने वाला हर कार्य मर्यादित ढंग से हो, इसकी जिम्मेदारी उन पर अधिक है जो राम मंदिर निर्माण के लिए अपनी प्रतिबद्धता प्रकट करने अयोध्या पहुंचे हैं। इस प्रतिबद्धता का गरिमामय प्रदर्शन न केवल उपयुक्त वातावरण का निर्माण करेगा, बल्कि उन्हें हतोत्साहित भी करेगा, जो अयोध्या विवाद के हल में अड़ंगा लगा रहे हैं। यही वह उपाय भी है, जिससे सुप्रीम कोर्ट को यह संदेश जाएगा कि इस मसले को अब और नहीं टाला जा सकता।

GS World
Committed To Excellence

हमें अपने बच्चों में, अपने परिवारों में रामत्व को विकसित करना होगा। सोच कर देखिए, हमारी इतिहास की किताबों में एक नाम आता है, 'औरंगजेब'। किसी कक्षा 7-8 में पढ़ने वाले छात्र से पूछिए कि औरंगजेब के पिता का नाम बताओ, वह झट से कहेगा- शाहजहां, शाहजहां के पिता का नाम-जहांगीर, जहांगीर के पिता का नाम- अकबर, अकबर के पिता का नाम-हुमायूं, हुमायूं के पिता का नाम-बाबर। मुगलों की वंशावली बाबर से शुरू होती है और हमारे परिवार के बच्चों को सब पता है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती।

अब उसी छात्र से पूछिए श्रीराम के पिता का नाम, वह बता देगा- दशरथ। लेकिन क्या वह यह बता पाएगा कि दशरथ के पिता का नाम अज था, क्या वह यह बता पाएगा कि अज के पिता का नाम नाभाग था, क्या वह यह बता पाएगा कि नाभाग के पिता का नाम ययाति था, क्या वह यह बता पाएगा कि जिन ब्रह्मा की 39वीं पीढ़ी में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्म हुआ, उन्हीं की 23वीं पीढ़ी में भागीरथ का जन्म हुआ था, जो मां गंगा को धरती पर लाए थे। इक्ष्वाकु वंश, जहां से हमें श्रीराम मिले, उसी वंश में महाराज रघु भी हुए, जिनके नाम पर इस कुल को रघुकुल कहा गया और कहा गया कि

रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाई पर वचन न जाई।

अब वह छात्र जिनके बारे में पढ़ रहा है, उन्हीं के चरित्र का एक अंश को आत्मसात ही करेगा। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। यदि वह औरंगजेब को इतनी गहनता के साथ पढ़ रहा है तो उसके मन में रिश्तों की मर्यादा के प्रति शुचिता पूर्ण रूप में नहीं रहेगी। लेकिन अगर वह रघु के बारे में पढ़ेगा, तो उसे समझ में आएगा कि कुछ भी हो जाए लेकिन हमें अपनी बात, अपने वचन को पूरा करना ही चाहिए। छात्रों को छोड़िए, ये जो लोग अयोध्या पहुंच रहे हैं, इनमें से अधिकतर को श्रीराम के दादा का नाम नहीं पता होगा। इनसे पूछो कि भाई अयोध्या में मंदिर क्यों चाहिए तो जवाब तो मिलेगा, लेकिन उस जवाब से आपको संतुष्टि नहीं मिलेगी।

मंदिर तो बनता रहेगा, अपना काम छोड़कर या अपनी राजनीति चमकाने के लिए लोग आंदोलन भी करते रहेंगे, लेकिन उनके अंदर जो राम हैं, उसे व्यवहार में नहीं लाएंगे और विश्वास मानिए, इन परिस्थितियों में श्रीराम मंदिर को आप हजारों एकड़ में भी बना लें, उसे विश्व का सबसे भव्य मंदिर क्यों ना बना लें, लेकिन यदि राम को जी नहीं सके तो राम शायद उससे भी अधिक दुखी होंगे, जितने अपने अनुज के मूर्छित होने पर हुए थे।

अयोध्या में धर्म संसद का आयोजन सुप्रीम कोर्ट द्वारा न्याय में देरी का नतीजा है (दैनिक जागरण)

सुप्रीम कोर्ट की ओर से अयोध्या मामले की सुनवाई टाले जाने के साथ ही यह तय हो गया था कि इस पर लोग निराशा जताने के साथ ही मोदी सरकार पर इसके लिए दबाव भी बनाएंगे कि वह अब तो इस मामले में कुछ करे। आखिरकार ऐसा ही हो रहा है। बीते दिनों शिवसेना प्रमुख उद्धव ठाकरे के अयोध्या जाने और वहां विश्व हिंदू परिषद की ओर से धर्म संसद आयोजित होने के पीछे एक बड़ा कारण सुप्रीम कोर्ट द्वारा अयोध्या मामले की सुनवाई टाल देना रहा। यह सुनवाई केवल टली ही नहीं, बल्कि न्याय की बाट जोहते लोगों को कोई नई तारीख भी नहीं मिली। सुप्रीम कोर्ट की ओर से कहा गया कि नई पीठ ही यह तय करेगी कि मामले को अगले साल फरवरी में सुना जाए या फिर, मार्च या अप्रैल में। इससे जाने-अनजाने देश को यही संदेश गया कि यह मामला सुप्रीम कोर्ट की प्राथमिकता में नहीं है। यह संदेश इसलिए और गया क्योंकि अयोध्या विवाद सुप्रीम कोर्ट में सात सालों से लंबित है।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय की ओर से सितंबर 2010 में दिए गए फैसले पर सुप्रीम कोर्ट ने मई 2011 में रोक लगा दी थी और फिर उसकी तब तक सुधि नहीं ली, जब तक 2016 में सुब्रमण्यम स्वामी ने एक याचिका पेशकर इस मामले की जल्द सुनवाई का आग्रह नहीं किया। 2017 में इस याचिका की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश जे.एस. खेहर ने कहा था कि इस मामले को आपसी बातचीत से सुलझाने की कोशिश की जाए तो बेहतर। उन्होंने इस बातचीत में मध्यस्थता करने की भी पेशकश की, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। इसके बाद अयोध्या विवाद की सुनवाई फिर शुरू हुई, तो पहले इस तरह की दलीलें दी गई कि इस मामले की सुनवाई अगले आम चुनाव तक टाल देनी चाहिए, फिर इस पर जोर दिया गया कि पहले सुप्रीम कोर्ट के 1994 के उस फैसले पर विचार हो जिसमें कहा गया था कि मस्जिद में नमाज इस्लाम का अभिन्न हिस्सा नहीं है।

सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्र वाली पीठ ने ऐसा ही किया और यह पाया कि इस फैसले का अयोध्या विवाद से कोई सीधा लेना-देना नहीं। इसके बाद यह उम्मीद और बढ़ी कि अब सुप्रीम कोर्ट से अयोध्या विवाद का निपटारा जल्द ही हो जाएगा, लेकिन बीते दिनों नए मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई वाली पीठ ने कहा कि यह मामला नई पीठ सुनेगी और वही यह देखेगी कि मामले की सुनवाई कब हो। इस टिप्पणी ने तुषारापात सा किया। लोगों को एक तरह से वही होता दिखा जो कपिल सिब्बल चाह रहे थे। यदि ऐसा कोई संकेत मिला होता कि सुप्रीम कोर्ट की नई पीठ अगले साल जनवरी में अयोध्या मामले की सुनवाई दिन-प्रतिदिन करेगी, तो भी शायद लोगों को उतनी निराशा नहीं हुई होती जितनी हुई और जिसके चलते यह मांग तेज हुई कि सरकार अध्यादेश लाकर या फिर कानून बनाकर अयोध्या में राम मंदिर के निर्माण का रास्ता साफ करे। निःसंदेह यदि सरकार अध्यादेश या फिर कानून के जरिये मंदिर निर्माण की पहल करती है, तो उसे सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी जा सकती है, लेकिन तब उसके पास यह कहने को होगा कि उसने अयोध्या में मंदिर निर्माण का अपना वायदा पूरा करने की कोशिश की। अभी तो वह ऐसा कुछ कहने की स्थिति में भी नहीं।

स्पष्ट है कि अगर मोदी सरकार या भाजपा की ओर से अयोध्या मामले को उठाया जाता है तो उसे इस सवाल से दो-चार होना पड़ेगा कि आखिर उसने बीते चार साल में मंदिर निर्माण के लिए क्या किया? इस सवाल पर सरकार की ओर से दिए जाने वाले ऐसे किसी जवाब से शायद ही बात बने कि वह सुप्रीम कोर्ट के फैसले की प्रतीक्षा कर रही थी, क्योंकि सच्चाई यही है कि अगर सुब्रमण्यम स्वामी ने पहल न की होती तो सुप्रीम कोर्ट शायद ही अयोध्या विवाद की सुनवाई करने के लिए सक्रिय होता। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिंदू परिषद् और अन्य हिंदू संगठनों ने अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के लिए अपनी मांग तेज करते हुए सरकार से कानून बनाने का जो अभियान सा छेड़ दिया है, उससे इसके आसार दिख रहे हैं कि यह मसला अगले आम चुनावों में एक मुद्दा बन सकता है। जानना कठिन है कि अगर ऐसा होता है तो इससे किसे राजनीतिक लाभ मिलेगा, क्योंकि अब तो कोई भी दल यह कहने की स्थिति में नहीं दिख रहा कि अयोध्या में राम मंदिर नहीं बनना चाहिए। अधिक से अधिक वे यही कह रहे हैं कि सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद ऐसा होना चाहिए। अयोध्या में मंदिर निर्माण के विरोधी रहे राजनीतिक दलों के सुर बदल गए हैं तो शायद इसीलिए कि उन्हें यह समझ आ गया है कि वहां मंदिर बनाने की मांग में वजन है। अब ऐसे सुझाव भी राम मंदिर निर्माण के विरोध की खोखली आड़ ही अधिक हैं कि विवादित स्थल पर स्कूल या अस्पताल बनना चाहिए। इसी तरह ऐसे तर्कों का भी कोई मूल्य नहीं कि क्या राम मंदिर बनने से गरीबी और बेकारी दूर हो जाएगी, क्योंकि इसकी गारंटी कोई नहीं ले सकता कि यह विवाद हल न होने से देश गरीबी और बेरोजगारी

से मुक्त हो जाएगा। अब ऐसे तर्क भी सुनाई नहीं देते कि भला नई पीढ़ी को मंदिर-मस्जिद से क्या मतलब? मतलब है और इसीलिए बीते दिनों देश का ध्यान अयोध्या पर केंद्रित रहा।

निःसंदेह बाबरी मस्जिद की कानूनी लड़ाई लड़ रहे संगठनों के नेता भी यह जान रहे होंगे कि विवादित स्थल पर अब मस्जिद नहीं बन सकती, लेकिन वे शायद इसलिए अड़े हुए हैं कि ताकि खुद को मुस्लिम समाज का हित रक्षक कहला सकें। दुर्भाग्य से वे सबसे अधिक अहित अपने ही समाज का कर रहे हैं। उन्हें इससे परिचित होना चाहिए कि यह विवाद समाज में वैमनस्य बढ़ा रहा है। एक क्षण के लिए यह माना जा सकता है कि अपनी राजनीति के फेर में पड़े नेता यह समझने को तैयार न हों कि उनके रुख-रवैये के कैसे परिणाम सामने आ रहे हैं, लेकिन क्या इस साधारण सी बात से सुप्रीम कोर्ट भी परिचित नहीं? लंबित मामलों को लेकर चिंतित रहने वाले सुप्रीम कोर्ट को तो इससे और भी अच्छी तरह परिचित होना चाहिए कि देरी के क्या दुष्परिणाम होते हैं। अयोध्या में बीते दिनों जो कुछ हुआ और इस विवाद को लेकर भविष्य में जो माहौल बनेगा, उसके लिए आरएसएस, विहिप, भाजपा और अन्य राजनीतिक दलों के साथ सुप्रीम कोर्ट भी उत्तरदायी होगा।

GS World टीम...

सारांश

- इन दिनों सत्तापक्ष से जुड़े कुछ नेता निरंतर यह प्रचार कर रहे हैं कि अयोध्या में राम मंदिर निर्माण का शुभारंभ छह दिसंबर के पूर्व आरंभ हो जाएगा। इससे पहले दिल्ली में विश्व हिंदू परिषद् की बैठक में भी यह बात उठी थी कि इस वक्त जब केंद्र और पंद्रह राज्यों में भाजपा की सरकारें हैं, ऐसी स्थिति में भी अगर मंदिर निर्माण नहीं आरंभ हो सका तो रामभक्तों में अविश्वास पनपेगा और इसका प्रभाव 2019 के लोकसभा चुनावों में पड़े बिना नहीं रहेगा।
- विश्व हिंदू परिषद् की ओर से राम मंदिर आंदोलन के दौरान निरंतर यह प्रचार किया जा रहा था कि इसका निर्धारण करने में कोई अदालत सक्षम नहीं है। यह तो संतों के निर्देश और इनके सुझावों के अनुसार होगा। मगर कठिनाई यह थी कि भारत के संविधान में संतों को न तो कोई विशेषाधिकार है, न वे अपनी इच्छा और अपेक्षा के अनुसार कोई ऐसा कार्य करने में सक्षम हैं, जो विधि सम्मत हो।
- जिस स्थल पर मंदिर की आवश्यकता बताई जाती है, वह बाबरी मस्जिद के बजाय रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवादित स्थल के रूप में प्रचारित किया जाता है। वह स्थल 6 दिसंबर, 1992 को विश्व हिंदू परिषद् की जुटाई भीड़ द्वारा ध्वस्त किया जा चुका है।
- सर्वोच्च न्यायालय भी इसका शीघ्र निपटारा चाहता है, लेकिन मंदिर निर्माण में लखनऊ उच्च न्यायालय के तीन जजों का फैसला, जिसकी अपील उन तीनों पक्षों ने दायर की है, जिनके पक्ष में विवादित स्थल को तीन भागों में बंटवारे का फैसला हुआ था, पर सुनवाई आरंभ हो गई है। इसमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह मामला किसी आस्था, विश्वास, धर्म और मान्यता पर नहीं, बल्कि भूमि कानून के अनुसार ही चलेगा।
- इस प्रकरण में यह सवाल उठता है कि जब लाहौर में जिस मस्जिद को गिरा कर सिखों ने गुरुद्वारा बनाया था, वह पाकिस्तान के इस्लामी शासन के बावजूद अभी तक बदला नहीं जा सका, बल्कि गुरुद्वारा यथावत विद्यमान है। भारत और पाकिस्तान में बजाब्ता दीवानी वही लागू है, जिसे अंग्रेजों ने 1864 में बना कर लागू किया था। अंग्रेजों के काल के दीवानी मामले में बारह वर्षों की वह सीमा भी लागू है, जो कब्जेदार को स्वामित्व का अधिकार प्रदान करती है।
- इस प्रसंग में बाबरी मस्जिद के ध्वस्त हो जाने के बाद 7 जनवरी, 1993 को अयोध्या विशिष्ट क्षेत्र भूमि अधिग्रहण अध्यादेश आया था। बाद में इसे संसद ने कानून के रूप में परिवर्तित कर दिया था। उसके बाद 24 अक्टूबर, 1994 को संविधान पीठ के पांच सदस्यों ने इस स्थल पर राममंदिर, मस्जिद, पुस्तकालय, वाचनालय, संग्रहालय और तीर्थयात्रियों की सुविधा वाले स्थानों का निर्माण करने को कहा है। संविधान पीठ ने इस अध्यादेश को वैध माना है और मुस्लिमों का यह कथन कि मस्जिद धार्मिक स्थल है, जिसका अधिग्रहण नहीं हो सकता, अस्वीकार कर दिया है।
- संसद के कानून के बावजूद उसके प्रावधानों के आधार पर निर्धारण इसलिए नहीं हो पाया, क्योंकि संविधान पीठ ने इस मामले में चल रहे मुकदमे को समाप्त करने के लिए जो व्यवस्था की थी, उसे न्यायालय ने संविधानेतर मान लिया है। इसी मामले में यह भी व्यवस्था दी गई है कि जो पक्ष स्वामित्व वाला मुकदमा जीते, उसे बड़ा भाग और जो हारे उसे छोटा भाग दिया जाए।
- इस विचाराधीन अपील पर तीन न्यायाधीशों की पीठ सुनवाई कर रही है, जो संविधान पीठ के किसी निर्णय को समाप्त करने में सक्षम नहीं है। अब विश्व हिंदू परिषद् की ओर से यह आवाज उठाई जा रही है कि संसद प्रस्ताव पारित करके मंदिर निर्माण आरंभ कराए। इस रास्ते में सबसे बड़ी बाधा 1993 में बना कानून है। एक ही विषय पर संसद दो व्यवस्थाएं नहीं कर सकती। संसद अपनी शक्ति का प्रयोग करके किसी कानून को समाप्त तो कर सकती है, लेकिन किसी अध्यादेश से नहीं।
- शिवसेना प्रमुख ने अयोध्या में बेशक कहा कि वे मंदिर मामले में कोई राजनीति नहीं कर रहे, पर उनके अचानक सक्रिय होने से साफ है कि उन्होंने इसे भाजपा के साथ जोर आजमाइश के मौके के तौर पर चुना है। भाजपा के एक विधायक ने उद्धव ठाकरे पर निशाना भी साधा कि वह महाराष्ट्र में उत्तर भारतीयों पर हमले कर अपनी

राजनीति करते आए हैं, अब उन्हें उत्तर भारत के मसले में अचानक दिलचस्पी कैसे पैदा हो गई।

- पिछले आम चुनाव में भाजपा ने वादा किया था कि अगर उसकी सरकार बनी, तो वह राम मंदिर का निर्माण कराएगी। मगर अब इस सरकार का कार्यकाल पूरा होने को है और मंदिर निर्माण के मामले में कोई गति नहीं आ पाई है। इसलिए विहिप का कहना है कि अब इस मामले में लोगों का धैर्य टूट रहा है, चाहे जैसे हो वह मंदिर बनवा कर रहेगी।
- मंदिर निर्माण के लिए कानून बनाने की प्रक्रिया जटिल है और वह इतनी जल्दी संभव नहीं है। फिर अगर वह अध्यादेश जारी करती है, तो उसका कानून पर भरोसे वाला तर्क झूठा साबित होगा। इससे देश में नए तरह का विवाद पैदा होने का खतरा भी है। हालांकि, अदालत ने कहा था कि अगर संत समाज और सभी धार्मिक-राजनीतिक दलों के साथ मिल-बैठ कर कोई सर्वमान्य हल निकाल लिया जाए, तो मंदिर निर्माण की राह सुगम हो जाएगी।
- राम मंदिर के भव्य निर्माण की बात करने से पहले हमें यह समझना होगा कि राम कौन हैं, राम कोई और नहीं हमारे अंदर विद्यमान हैं। जब हमारी आंखों के सामने कुछ गलत हो रहा हो और हम उसके खिलाफ संघर्ष करें, तो इसका अर्थ है कि हमारे अंदर रामत्व शेष है, और जब हम स्वयं कुछ गलत करें अथवा गलत का विरोध न करें तो समझ लेना चाहिए कि ईश्वर द्वारा आशीर्वाद स्वरूप दिए गए रामत्व को हम सहेज नहीं पा रहे हैं।
- अयोध्या में राम मंदिर निर्माण की मांग और तेज होने पर आश्चर्य नहीं। ऐसा होना तभी तय हो गया था जब सुप्रीम कोर्ट ने इस बहुप्रतीक्षित मामले की सुनवाई टालने का फैसला किया था। यह फैसला इसलिए कहीं अधिक निराशाजनक था, क्योंकि यह ठीक उस समय आया जब पूरा देश यह आशा कर रहा था कि अब इस मसले के निपटारे में अधिक देर नहीं होगी।
- दुर्भाग्य से जब यह अपेक्षित था कि अयोध्या विवाद की सुनवाई दिन-प्रतिदिन होगी, तब सुप्रीम कोर्ट से यह सुनने को मिला कि इस प्रकरण पर गठित होने वाली नई पीठ ही यह तय करेगी कि सुनवाई अगले साल जनवरी, फरवरी, मार्च या फिर अप्रैल में होगी। यदि आम जनता और खासकर अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के आकांक्षी लोगों की ओर से इसे न्याय में देरी के रूप में देखा गया, तो इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।
- यह केवल मान्यता मात्र नहीं कि अयोध्या राम की है, बल्कि इसके ऐतिहासिक और पुरातात्विक प्रमाण भी उपलब्ध हैं कि विवादित स्थल पर एक मंदिर के ऊपर ही मस्जिद बनाई गई थी। इससे बड़ी विडंबना और कोई नहीं हो सकती कि तमाम प्रमाणों के बाद भी देश की अस्मिता और सांस्कृतिक चेतना के प्रेरणास्रोत भगवान राम के नाम का मंदिर उनके ही जन्मस्थल पर बनने में अनावश्यक देर हो रही है।
- इसमें कोई संशय नहीं कि अयोध्या मसले को सांप्रदायिक चश्मे से देखने और उसे हिंदू-मुस्लिम का सवाल बनाने वालों के कारण ही इस विवाद के समाधान में जरूरत से ज्यादा देर हो रही है। इस देरी के कारण अयोध्या में राम मंदिर निर्माण की बाट जोह रहे जनमानस की बेचैनी बढ़ी है, लेकिन यह भी सही है कि वर्तमान परिस्थितियों में थोड़ी और प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं, क्योंकि अध्यादेश या फिर कानून के जरिये मंदिर निर्माण की कोई भी कोशिश उस अदालत के दरवाजे ही पहुंचेगी, जिसने जनवरी में इस मामले की सुनवाई करने को कहा है।
- बीते दिनों शिवसेना प्रमुख उद्धव ठाकरे के अयोध्या जाने और वहां विश्व हिंदू परिषद् की ओर से धर्म संसद आयोजित होने के पीछे एक बड़ा कारण सुप्रीम कोर्ट द्वारा अयोध्या मामले की सुनवाई टाल देना रहा। यह सुनवाई केवल टली ही नहीं, बल्कि न्याय की बाट जोहते लोगों को कोई नई तारीख भी नहीं मिली।
- इलाहाबाद उच्च न्यायालय की ओर से सितंबर 2010 में दिए गए फैसले पर सुप्रीम कोर्ट ने मई 2011 में रोक लगा दी थी और फिर उसकी तब तक सुधि नहीं ली, जब तक 2016 में सुब्रमण्यम स्वामी ने एक याचिका पेशकर इस मामले की जल्द सुनवाई का आग्रह नहीं किया।
- 2017 में इस याचिका की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश जे.एस. खेहर ने कहा था कि इस मामले को आपसी बातचीत से सुलझाने की कोशिश की जाए तो बेहतर। उन्होंने इस बातचीत में मध्यस्थता करने की भी पेशकश की, लेकिन ऐसा नहीं हो सका।

राम- जन्मभूमि विवाद

- हिन्दुओं की मान्यता है कि श्री राम का जन्म अयोध्या में हुआ था और उनके जन्मस्थान पर एक भव्य मन्दिर विराजमान था, जिसे मुगल आक्रमणकारी बाबर ने तोड़कर वहाँ एक मस्जिद बना दी।
- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी की अगुवाई में इस स्थान को मुक्त करने एवं वहाँ एक नया मन्दिर बनाने के लिये एक लम्बा आन्दोलन चला। 6 दिसम्बर सन् 1992 को यह विवादित ढांचा गिरा दिया गया और वहाँ श्री राम का एक अस्थायी मन्दिर निर्मित कर दिया गया।
- **1528:** बाबर ने यहां एक मस्जिद का निर्माण कराया, जिसे बाबरी मस्जिद कहते हैं। हिंदू मान्यता के अनुसार इसी जगह पर भगवान राम का जन्म हुआ था.

- **1853:** हिंदुओं का आरोप है कि भगवान राम के मंदिर को तोड़कर मस्जिद का निर्माण हुआ। इस मुद्दे पर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच पहली हिंसा हुई।
- **1859:** ब्रिटिश सरकार ने तारों की एक बाड़ खड़ी करके विवादित भूमि के आंतरिक और बाहरी परिसर में मुस्लिमों और हिदुओं को अलग-अलग प्रार्थनाओं की इजाजत दे दी।
- **1885:** मामला पहली बार अदालत में पहुंचा। महंत रघुबर दास ने फैजाबाद अदालत में बाबरी मस्जिद से लगे एक राम मंदिर के निर्माण की इजाजत के लिए अपील दायर की।
- **23 दिसंबर 1949:** करीब 50 हिंदुओं ने मस्जिद के केंद्रीय स्थल पर कथित तौर पर भगवान राम की मूर्ति रख दी। इसके बाद उस स्थान पर हिंदू नियमित रूप से पूजा करने लगे। मुसलमानों ने नमाज पढ़ना बंद कर दिया।
- **16 जनवरी 1950:** गोपाल सिंह विशारद ने फैजाबाद अदालत में एक अपील दायर कर रामलला की पूजा-अर्चना की विशेष इजाजत मांगी।
- **5 दिसंबर 1950:** महंत परमहंस रामचंद्र दास ने हिंदू प्रार्थनाएं जारी रखने और बाबरी मस्जिद में राममूर्ति को रखने के लिए मुकदमा दायर किया। मस्जिद को 'ढांचा' नाम दिया गया।
- **17 दिसंबर 1959:** निर्मोही अखाड़ा ने विवादित स्थल हस्तांतरित करने के लिए मुकदमा दायर किया।
- **18 दिसंबर 1961:** उत्तर प्रदेश सुन्नी वक्फ बोर्ड ने बाबरी मस्जिद के मालिकाना हक के लिए मुकदमा दायर किया।
- **1984:** विश्व हिंदू परिषद् (वीएचपी) ने बाबरी मस्जिद के ताले खोलने और राम जन्मस्थान को स्वतंत्र कराने व एक विशाल मंदिर के निर्माण के लिए अभियान शुरू किया। एक समिति का गठन किया गया।
- **1 फरवरी 1986:** फैजाबाद जिला न्यायाधीश ने विवादित स्थल पर हिंदुओं को पूजा की इजाजत दी। ताले दोबारा खोले गए। नाराज मुस्लिमों ने विरोध में बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी का गठन किया।
- **जून 1989:** भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) ने वीएचपी को औपचारिक समर्थन देना शुरू करके मंदिर आंदोलन को नया जीवन दे दिया।
- **1 जुलाई 1989:** भगवान रामलला विराजमान नाम से पांचवाँ मुकदमा दाखिल किया गया।
- **9 नवंबर 1989:** तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी की सरकार ने बाबरी मस्जिद के नजदीक शिलान्यास की इजाजत दी।
- **25 सितंबर 1990:** बीजेपी अध्यक्ष लाल कृष्ण आडवाणी ने गुजरात के सोमनाथ से उत्तर प्रदेश के अयोध्या तक रथ यात्रा निकाली, जिसके बाद साम्प्रदायिक दंगे हुए।
- **नवंबर 1990:** आडवाणी को बिहार के समस्तीपुर में गिरफ्तार कर लिया गया। बीजेपी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह की सरकार से समर्थन वापस ले लिया।
- **अक्टूबर 1991:** उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह सरकार ने बाबरी मस्जिद के आस-पास की 2.77 एकड़ भूमि को अपने अधिकार में ले लिया।
- **6 दिसंबर 1992:** हजारों की संख्या में कार सेवकों ने अयोध्या पहुंचकर बाबरी मस्जिद को गिरा दिया। इसके बाद सांप्रदायिक दंगे हुए। जल्दबाजी में एक अस्थायी राम मंदिर बनाया गया।
- **16 दिसंबर 1992:** मस्जिद की तोड़-फोड़ की जिम्मेदार स्थितियों की जांच के लिए लिब्रहान आयोग का गठन हुआ।
- **जनवरी 2002:** प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने कार्यालय में एक अयोध्या विभाग शुरू किया, जिसका काम विवाद को सुलझाने के लिए हिंदुओं और मुसलमानों से बातचीत करना था।
- **अप्रैल 2002:** अयोध्या के विवादित स्थल पर मालिकाना हक को लेकर उच्च न्यायालय के तीन जजों की पीठ ने सुनवाई शुरू की।
- **मार्च-अगस्त 2003:** इलाहबाद उच्च न्यायालय के निर्देशों पर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने अयोध्या में खुदाई की। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का दावा था कि मस्जिद के नीचे मंदिर के अवशेष होने के प्रमाण मिले हैं। मुस्लिमों में इसे लेकर अलग-अलग मत थे।
- **सितंबर 2003:** एक अदालत ने फैसला दिया कि मस्जिद के विध्वंस को उकसाने वाले सात हिंदू नेताओं को सुनवाई के लिए बुलाया जाए।
- **जुलाई 2009:** लिब्रहान आयोग ने गठन के 17 साल बाद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को अपनी रिपोर्ट सौंपी।
- **28 सितंबर 2010:** सर्वोच्च न्यायालय ने इलाहबाद उच्च न्यायालय को विवादित मामले में फैसला देने से रोकने वाली याचिका खारिज करते हुए फैसले का मार्ग प्रशस्त किया।
- **30 सितंबर 2010:** इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया। इलाहाबाद हाई कोर्ट ने विवादित जमीन को तीन हिस्सों में बांटा, जिसमें एक हिस्सा राम मंदिर, दूसरा सुन्नी वक्फ बोर्ड और निर्मोही अखाड़े में जमीन बंटी।
- **9 मई 2011:** सुप्रीम कोर्ट ने इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले पर रोक लगा दी।
- **जुलाई 2016:** बाबरी मामले के सबसे उम्रदराज वादी हाशिम अंसारी का निधन।
- **21 मार्च 2017:** सुप्रीम कोर्ट ने आपसी सहमति से विवाद सुलझाने की बात कही।
- **19 अप्रैल 2017:** सुप्रीम कोर्ट ने बाबरी मस्जिद गिराए जाने के मामले में लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, उमा भारती सहित बीजेपी और आरएसएस के कई नेताओं के खिलाफ आपराधिक केस चलाने का आदेश दिया।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. भारत सरकार द्वारा 1992 में अयोध्या में विवादित ढांचे बाबरी मस्जिद के विध्वंस की जांच-पड़ताल के लिए निम्न में से कौन-से आयोग का गठन किया गया?
(a) जस्टिस ए.एस. परमार
(b) जस्टिस मनमोहन सिंह लिब्रहान
(c) जस्टिस एन.रामास्वामी
(d) जस्टिस आयंगर पी. रामकर
(उत्तर-b)

2. मीर बाकी निम्न में से किस मुगल शासक का सेनापति था?
(a) अकबर
(b) बाबर
(c) शाहजहा
(d) जहांगीर
(उत्तर-b)

3. बाबर के संदर्भ में निम्न में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
1. बाबर का जन्म वर्तमान उज्बेकिस्तान के फरगना प्रान्त में हुआ।
2. बाबर की भारत में निर्णायक लड़ाई 1526 में पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी से हुयी।
नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
(a) केवल 1
(b) केवल 2
(c) 1 और 2 दोनों
(d) न तो 1, न ही 2
(उत्तर-c)

4. विवादित जन्मभूमि ढांचा, जो कि अयोध्या में स्थित है, निम्न में से किस नदी पर स्थित है?
(a) गंगा
(b) सरयू
(c) कावेरी
(d) गोदावरी
(उत्तर-b)

5. अयोध्या मसले को सांप्रदायिक चश्मे से देखने और उसे हिंदू-मुस्लिम का सवाल बनाने वालों के कारण ही इस विवाद के समाधान में जरूरत से ज्यादा देर हो रही है। विश्लेषण कीजिए।

पिछले वर्षो में पूछे गए प्रश्न

1. लिब्रहान आयोग द्वारा निम्नलिखित में से किसकी जांच की गई?
(a) टेस्ट, क्रिकेट मैच फिक्सिंग (पूर्वनिर्धारण)
(b) बेस्ट बेकरी मामला
(c) तहलका टेप मामला
(d) अयोध्या में विवादास्पद इमारत का गिराना
(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2005, उत्तर-d)

2. भारत के कला और पुरातात्विक इतिहास के संदर्भ में निम्नलिखित में से किस एक का सबसे पहले निर्माण किया गया था।
(a) भुवनेश्वर स्थित लिंगराज मदिंर
(b) धौली स्थित शैलकृत हाथी
(c) महाबलिपुरम् स्थित शैलकृत स्मारक
(d) उदयगिरि स्थित वराह मूर्ति
(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2015, उत्तर-b)

3. निम्नलिखित में से कौन-सा/से सूर्य मंदिरों के लिए विख्यात है/हैं?
1. अरसवल्ली
2. अमरकंटक
3. ओंकारेश्वर
नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
(a) केवल 1
(b) 2 और 3
(c) 1 और 3
(d) 1, 2 और 3
(IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2017, उत्तर-a)

4. धर्मनिरपेक्षता पर भारतीय वाद-विवाद, पश्चिम में वाद-विवादों से किस प्रकार भिन्न है?
(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2014)

5. स्वतंत्र भारत में धार्मिकता किस प्रकार सांप्रदायिकता में रूपांतरित हो गई, इसका एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए धार्मिकता एवं सांप्रदायिकता के मध्य विभेदन कीजिए।
(IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-1, वर्ष-2017)

GS World Committed To Excellence

भारतीय सुरक्षा व्यवस्था और आतंकवाद

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-3 (आंतरिक सुरक्षा) से संबंधित है।

आतंकवाद से लड़ने के लिए बड़े जोर-शोर से एनआईए यानी राष्ट्रीय जांच एजेंसी का गठन किया गया था। माना गया था कि यह त्वरित कार्रवाई करेगी। इसके जरिए हम न केवल पुरानी आतंकवादी घटनाओं की समीक्षा कर सकेंगे, बल्कि आगे के लिए सार्थक रणनीति भी बना सकेंगे। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'जनसत्ता' तथा 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

सुरक्षा और सवाल (जनसत्ता)

पिछले दस साल में भारत में जिस पुख्ता सुरक्षा की जरूरत महसूस की जाती रही है, उस पर हासिल परिणाम संतोषजनक नहीं रहा है। उपलब्धि के नाम पर देश में राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) का गठन हुआ। आतंकवाद जैसे गंभीर मामलों की जांच इसके गठन का मकसद था और कई मामलों में यह एजेंसी सफल भी हुई। तटीय सुरक्षा को दुरुस्त किया गया। लेकिन राष्ट्रीय आतंकवाद निरोधक केंद्र (एनसीटीसी) बनाने की योजना राज्यों के विरोध के कारण आज तक परवान नहीं चढ़ सकी, जबकि यह सबसे जरूरी था।

मुंबई हमले की त्रासद घटना को दस साल बीत चुके हैं। यों तो भारत कश्मीर में आतंकवाद की मार झेल ही रहा था, लेकिन 26 नवंबर, 2008 को देश की आर्थिक राजधानी मुंबई को आतंकवादियों ने जिस तरह निशाना बनाया, वह अकल्पनीय था। पाकिस्तान ऐसी दुश्मनी निभाएगा, किसी ने सोचा भी नहीं होगा। लश्कर-ए-तैयबा के सरगना हाफिज सईद ने इस हमले की साजिश रची थी और समुद्री रास्ते से आतंकवादियों को भेज कर हमले को अंजाम दिया था। बहत्तर घंटे आतंकियों के साथ चली लड़ाई में एक सौ अस्सी से ज्यादा लोग मारे गए, बाईस विदेशी नागरिकों की भी इस हमले में जान चली गई और सत्रह सुरक्षाकर्मी शहीद हुए। घायलों का आंकड़ा तो तीन सौ के पार था। अरबों की संपत्ति खाक हुई। भारत ही नहीं, दुनिया को हिला देने वाले इस हमले ने अमेरिका पर हुए 9/11 के आतंकी हमले की याद ताजा करा दी थी। इसी के बाद यह हकीकत सामने आई कि हमारी सुरक्षा-व्यवस्था का आलम क्या है। भारत ने ऐसा हमला पहली बार झेला था, इसलिए आतंकियों से निपटने की रणनीति बनाने में देर हुई और तब तक हमलावरों को तबाही मचाने का काफी मौका मिल चुका था।

तब मुंबई हमले से हमारे खुफिया तंत्र की भी कमजोरी सामने आई थी। यह भी पता चला कि सरकारी एजेंसियों में तालमेल की किस कदर कमी थी, जिसकी वजह से मौके पर सुरक्षा बलों को पहुंचाने में घंटों निकल गए थे और तब तक मुंबई पुलिस के जवान ही मोर्चा संभालते रहे। जबकि अमेरिका पर हुए आतंकी हमले के बाद दुनिया के ज्यादातर देशों ने अपनी सुरक्षा को मजबूत करने और ऐसे हमलों से निपटने की रणनीति पर तत्काल काम शुरू कर दिया था। हमले के बाद अमेरिका ने अपनी सुरक्षा को अभेद्य बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी और उसी का नतीजा है कि फिर कभी अमेरिका पर आतंकी हमला नहीं हुआ। इसके ठीक उलट, मुंबई हमले के बाद भी पाकिस्तान में पल रहे आतंकी संगठनों ने भारत में सैन्य ठिकानों पर एक बार नहीं, कई बार हमले कर अपनी मौजूदगी का अहसास कराया। हालांकि, इससे पहले भारत 2001 में भी संसद पर

आतंक की दस्तक (जनसत्ता)

अमृतसर जिले में राजासांसी के पास अदवीवाल गांव में रविवार को निरंकारी सत्संग पर जो आतंकी हमला हुआ है, वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि पंजाब में आतंकवाद फिर से पैर पसार रहा है। भले इस हमले की जड़ें दशकों पुराने निरंकारी-सिख टकराव में बताई जा रही हों, लेकिन अब यहां आतंक फैलाने में कश्मीर में सक्रिय गुटों पर शक जा रहा है। दरअसल, इस हमले से कुछ दिन पहले ही पंजाब में आतंकियों की घुसपैठ की आशंका जताई गई है और पठानकोट में इनोवा लूटने के बाद राज्य में अलर्ट जारी कर दिया गया है। जैश-ए-मोहम्मद के कमांडर जाकिर मूसा को भी पंजाब में देखा गया है। अब तक जो तथ्य सामने आए हैं, उनसे साफ है कि यह कोई निजी दुश्मनी को लेकर किया गया हमला नहीं, बल्कि आतंकी हमला है। इससे एक बात तो साफ है कि पंजाब में अशांति फैलाने की कोशिशें बंद नहीं हुई हैं और देश के भीतर और बाहर से इसे सुलगाने के प्रयास जारी हैं।

अस्सी के दशक में पंजाब ने जिस तरह का आतंकवाद झेला है, उसके घाव आज भी हरे हैं। हजारों बेगुनाह लोग आतंकवादियों की हिंसा का शिकार हुए। हालांकि, पंजाब से आतंकवादियों के सफाए के बाद कुछ साल पहले तक लग रहा था कि वहां अब आतंकवाद का खात्मा हो चुका है। लेकिन पिछले दो साल में जिस तरह के हमले सामने आए हैं, उनसे तो लगता है राज्य में आतंक की चिनगारी अभी बुझी नहीं है। गौरतलब है कि जनवरी, 2016 में पठानकोट के वायुसेना स्टेशन पर आतंकी हमला हुआ था। इसके बाद जनवरी, 2017 में बठिंडा की मौड़ मंडी में कार धमाके में तीन लोग मारे गए थे। फिर गुरदासपुर और जलंधर में आतंकी हमले देखने को मिले। हाल में थलसेनाध्यक्ष और खुफिया एजेंसियों ने भी राज्य में आतंकी हमले को लेकर आगाह किया था। इस घटना के बाद सबसे बड़ी चिंता तो यही उभर कर आई है कि पंजाब कहीं फिर से भिंडरांवाले युग में तो नहीं जा रहा! अमृतसर में 13 अप्रैल, 1978 को जरनैलसिंह भिंडरांवाले की एक सभा में निरंकारियों और निहंगों के बीच खूनी संघर्ष में तेरह सिख मारे गए थे। उसके बाद से पंजाब में आतंकवाद पनपा। तब से निरंकारियों और सिखों के बीच टकराव का यह सिलसिला कभी नहीं थमा। अगर ऐसा है तो यह पंजाब के लिए बड़े खतरे का संकेत है।

राज्य के मुख्यमंत्री ने इस घटना में खालिस्तान समर्थकों का हाथ होने की भी बात कही है। हालांकि, यह कोई नई बात नहीं है। ब्रिटेन सहित यूरोप के कई देशों और अमेरिका में खालिस्तान समर्थक आज भी सक्रिय हैं और ये समूह-संगठन समय-समय पर अपनी मौजूदगी का अहसास कराते रहते हैं। इस साल अगस्त में अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य के युबा शहर में खालिस्तान समर्थकों ने दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष और शिरोमणि अकाली दल के नेता मंजीत सिंह जी पर जानलेवा

हमले की मार झेल चुका था, पर तब सुरक्षा के मोर्चे पर ऐसा कुछ नहीं हुआ, जिससे आतंकी दुबारा दुस्साहस नहीं कर पाते।

पिछले दस साल में भारत में जिस पुख्ता सुरक्षा की जरूरत महसूस की जाती रही है, उस पर हासिल परिणाम संतोषजनक नहीं रहा है। उपलब्धि के नाम पर देश में राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) का गठन हुआ। आतंकवाद जैसे गंभीर मामलों की जांच इसके गठन का मकसद था और कई मामलों में यह एजेंसी सफल भी हुई। तटीय सुरक्षा को दुरुस्त किया गया। लेकिन राष्ट्रीय आतंकवाद निरोधक केंद्र (एनसीटीसी) बनाने की योजना राज्यों के विरोध के कारण आज तक परवान नहीं चढ़ सकी, जबकि यह सबसे जरूरी था। ऐसे में सवाल उठता है कि आतंकवाद और देश की सुरक्षा जैसे अत्यंत संवेदनशील मुद्दे पर भी हम अब तक उलझे क्यों हैं? कश्मीर में नेपाल के रास्ते आतंकी घुसपैठ जारी है। पंजाब से लेकर दिल्ली तक में आतंकियों के होने की खबरें हैं। इसका मतलब है कि मुंबई हमले के दस साल बाद भी हमारे कोताही भरे रवैये में कोई बदलाव नहीं आया है। अमेरिका से सीखना चाहिए कि कैसे उसने हमले के सूत्रधार और अलकायदा सरगना ओसामा बिन लादेन को पाकिस्तान में घुस कर खत्म किया। जबकि मुंबई हमले का साजिशकर्त्ता हाफिज सईद पाकिस्तान में खुलेआम घूम रहा है। जाहिर है, अमेरिका के पास ताकत से भी ज्यादा राजनीतिक इच्छाशक्ति थी, जो भारत के पास नहीं दिखती!

आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियां (जनसत्ता)

इस महीने की शुरुआत में आई एक खुफिया रिपोर्ट में कश्मीर घाटी में जाकिर मूसा और हिजबुल मुजाहिदीन के साथ मिल कर हमला करने की योजना से संबंधित संकेत दिया गया था। इसके लगभग बीस दिन पहले जलंधर से कुछ छात्र हथियारों के साथ पकड़े गए थे, जिनके संबंध आइएस की भारतीय शाखा आतंकी संगठन अंसार गजवत-उल-हिंद से होने की बात सामने आई थी। अंसार गजवत-उल-हिंद का मुखिया जाकिर मूसा है और उसकी शिक्षा पंजाब में हुई है। खुफिया एजेंसियों के संज्ञान में इन खतरों के होने के बाद भी जाकिर मूसा पंजाब में प्रवेश करने में कामयाब हो गया और इसकी पुष्टि पंजाब पुलिस ने भी की। अमृतसर में पुलिस ने आतंकी जाकिर मूसा के पोस्टर शहर भर में लगाए। पुलिस की चौकसी और सुरक्षा व्यवस्था के चाक-चौबंद होने के दावों के बाद भी 19 नवंबर को अमृतसर से दस किलोमीटर दूर एक गांव में स्थित निरंकारी भवन पर हुए संदिग्ध चरमपंथी हमले में तीन लोग मारे गए और कई घायल हो गए। हमला किसने और क्यों किया, इसका अभी तक खुलासा नहीं हो पाया है। तमाम आशंकाओं के बीच मूसा गायब है।

दरअसल 26 नवंबर, 2008 को मुंबई हमले के बाद खुफिया तंत्र के कायापलट की बात कही गई थी। 2008 में संसद द्वारा राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम भी बनाया गया था। इस अधिनियम के अनुसार एनआईए का अधिकार क्षेत्र समवर्ती है। इससे केंद्र देश के किसी भी भाग में आतंकवादी हमले, देश की एकता और अखंडता के खतरे, बम विस्फोटों, हवाई जहाज या समुद्री जहाज के अपहरण और परमाणु प्रतिष्ठानों पर हमलों से संबंधित मामलों की जांच कर सकता है। इसके अतिरिक्त जाली मुद्रा, मानव तस्करी, ड्रग्स या मादक पदार्थ, संगठित अपराध, परमाणु ऊर्जा अधिनियम का उल्लंघन, सामूहिक विनाशक हथियार से संबंधित अपराध भी इसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

इस समय देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी उठाने वाली प्रमुख एजेंसियों में खुफिया ब्यूरो, रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (रॉ), नेशनल टेक्नीकल रिसर्च आर्गेनाइजेशन (एनटीआरओ), डिफेंस इंटेलीजेंस एजेंसी (डीआईए), सैन्य खुफिया इकाई, राजस्व खुफिया निदेशालय (डीआरआई) और केंद्रीय आर्थिक खुफिया ब्यूरो (सीईआईबी) शामिल हैं। इन एजेंसियों पर सरकार हमला कर दिया था। इस हमले से चार दिन पहले भी उन पर न्यूयॉर्क में खालिस्तान समर्थकों ने ही हमला किया था। हमलावर एक बड़े समूह में थे और खालिस्तान के लिए जनमत संग्रह की मांग कर रहे थे।

लंदन में भी खालिस्तान समर्थकों ने स्वतंत्रता दिवस पर जुलूस निकालने की कोशिश की थी और खालिस्तान की मांग को लेकर नारे लगाए थे। ये घटनाएं बताती हैं कि अलग खालिस्तान की मांग को लेकर सुगबुगाहट फिर तेज हो रही है। यह सभी जानते हैं कि पाकिस्तान शुरू से ही खालिस्तानियों को हर तरह से समर्थन और मद्द देता रहा है और पंजाब में आतंकवाद फैलाता रहा है। ऐसे में केंद्र व राज्य सरकार, सेना, सुरक्षा बलों, खुफिया एजेंसियों को सतर्क रहने की जरूरत है।

क्यों डराती है पंजाब की ताजा वारदात (हिन्दुस्तान)

अमेरिका के राष्ट्रपति हमारे समय के सबसे विवादास्पद अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व हैं। उनके तमाम बयान और विवाद हर रोज हमारे सामने आते रहते हैं। तमाम ऊट-पटांग बातों के बीच अगर वह कुछ समझदारी की बात भी कहते हैं, तो लोग उसे गंभीरता से नहीं लेते। यह तय कर पाना हमेशा मुश्किल होता है कि उनकी बात को कितना अमेरिकी सरकार की नीतियों से जोड़कर देखा जाए और कितना राष्ट्रपति की फितरत से। पाकिस्तान के बारे में उनका ताजा बयान भी हमारे सामने इसी धर्मसंकट के साथ उपस्थित हुआ है। फॉक्स न्यूज को दिए गए एक इंटरव्यू में उन्होंने पाकिस्तान को काफी खरी-खोटी सुनाई है। उनका कहना है कि पाकिस्तान ने अमेरिका के लिए कुछ नहीं किया, जबकि उसने पाकिस्तान को 1.3 अरब डॉलर की सालाना मद्द दी है।

इस संबंध में ट्रंप ने खासकर ओसामा बिन लादेन का जिक्र किया। उन्होंने कहा कि दुनिया का यह मोस्ट वांटेड आतंकवादी पाकिस्तान के एक सैनिक शहर में आलीशान घर बनवाकर आराम से रह रहा था और उसने कोई कदम नहीं उठाया। 'वह वहां मिलिट्री एकेडमी के ठीक पास में रह रहा था और सब उसके बारे में जानते थे, लेकिन कुछ नहीं हुआ'। बाद में अमेरिका के नेवी सील कमांडो ने एबटाबाद के इसी घर में जाकर ओसामा बिन लादेन को मार गिराया था। इंटरव्यू में ट्रंप से पाकिस्तान को अमेरिकी प्रशासन द्वारा बंद कर दी गई 30 करोड़ डॉलर की मद्द के बारे में सवाल पूछा गया था और जवाब में उन्होंने यह सब कहा। उन्होंने यह भी जोड़ा कि जो लोग अफगानिस्तान में अमेरिकी सैनिकों को मार रहे हैं, पाकिस्तान उन्हें सुरक्षित पनाहगाह उपलब्ध करा रहा है।

वैसे ट्रंप ने जो कहा, वह उनका निजी विचार ही नहीं है, अमेरिका के आम और खास लोग भी अक्सर ऐसी ही बात करते सुनाई दे जाते हैं। दिक्कत यह है कि यह धारणा अमेरिकी सरकार की नीतियों में कभी नहीं दिखाई देती। अब जब खुद अमेरिकी राष्ट्रपति ही यह कह रहे हैं, तो इसे क्या माना जाए? यह सच है कि अमेरिका अब पाकिस्तान के प्रति उतना उदार नहीं रहा, जितना कि कभी पहले हुआ करता था।

लेकिन अमेरिका की दिक्कत यह है कि उसकी अफगान रणनीति में पाकिस्तान की केंद्रीय भूमिका शुरू से ही रही है, और यह अभी भी बनी हुई है। इसका एक सीधा सा अर्थ यह है कि जब तक अमेरिकी सैनिक अफगानिस्तान में हैं, अमेरिका को पाकिस्तान की जरूरत पड़ती रहेगी। एक दूसरी संभावना यह हो सकती है कि अमेरिका कोई वैकल्पिक अफगान रणनीति बनाए, फिलहाल तो यह होता दिख नहीं रहा।

पंजाब में क्या इतिहास फिर अपने को दोहराने जा रहा है? आतंकवादी खूंरेजी के उन काले दशकों की शुरुआत निरंकारियों के खिलाफ आंदोलनों और हिंसा से हुई और यह अपने निर्णायक दौर में 1980 में निरंकारी प्रमुख बाबा गुरुबचन सिंह की हत्या के बाद ही दाखिल हुई थी। एक बार फिर 18 नवंबर को अमृतसर के ग्रामीण इलाके में निरंकारी गुरुद्वारे

GS World Committed To Excellence

करोड़ों रुपए खर्च कर रही है। इन एजेंसियों द्वारा दी जा रही गोपनीय सूचनाओं की बात की जाए, तो इसमें गोपनीयता जैसा कुछ नजर नहीं आता, जबकि एजेंसियों में आपसी तालमेल की जगह अंतर्द्वंद्व की आशंका ज्यादा दिखाई पड़ती है। मुंबई हमले के बाद साल 2009 में बनाई गई राष्ट्रीय जांच एजेंसी राज्यों के आतंक निरोधी दस्तों (एटीएस) और आईबी के साथ कई मामलों में आमने-सामने होती है। गौरतलब है कि महाराष्ट्र एटीएस ने 13 फरवरी, 2010 को हुए जर्मन बेकरी ब्लास्ट की जांच एनआईए को सौपने से इंकार कर दिया था। एजेंसियों में समन्वय का अभाव इतना ज्यादा है कि वे सूत्र तक उजागर नहीं करतीं और निर्णायक सूचनाओं को अपने पास ही दबाकर रखती हैं ताकि उसका श्रेय खुद ले सकें। वर्तमान में आतंकवाद निरोधक ऑपरेशनों के लिए विभिन्न राज्यों की पुलिस के साथ आईबी समन्वय की भूमिका निभाती है। परंतु एक ही समय में कई जगह ऑपरेशन एक साथ करना हो, तो इसके लिए कोई एकीकृत कमान नहीं है। आंतरिक सुरक्षा की सबसे बड़ी जिम्मेदारी पुलिस की होती है, लेकिन राज्य पुलिस सुधारों को लागू करने में बुरी तरह नाकाम रहे हैं।

देश में आतंकवाद से निपटने के लिए एनसीटीसी या राष्ट्रीय आतंकवाद निरोधक केंद्र को तत्कालीन सरकार ने मार्च 2012 में मंजूरी दी थी। उस समय इसे सभी राज्यों की मंजूरी मिलना आवश्यक बताया गया था। लेकिन बिहार, तमिलनाडु, ओड़िशा, गुजरात और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों के विरोध के बाद इसे रोक लिया गया। इसे आईबी के मातहत काम करना था और इसके सहायक अंगों में एनआईए, नैटग्रिड, एनएसजी और एएमसी का होना था। इस समय भारत में आतंकवाद से निपटने के लिए एकल केंद्र नहीं है। केंद्र और राज्यों के टकराव और क्षेत्रीय राजनीति इसमें बाधक बनी हुई है। पुलिस की भारी कमी है और आतंकवाद से मुकाबले के लिए वह बिल्कुल तैयार नहीं है। आईबी और रॉ के बीच कई मौकों पर तालमेल की कमी सामने आई है। आतंकियों का कोई केंद्रीय डाटाबेस भी नही है। सार्वजनिक स्थानों की सुरक्षा भगवान भरोसे है और एचडी (हाई डेफिनेशन) कैमरों की संख्या नगण्य है। धार्मिक स्थलों की अधिसंख्यता बड़ी चुनौती है। कट्टरपंथी तत्वों को दूर रखने और उनसे सख्ती से निपटने की कोई नीति अभी तक कारगर नहीं हो पाई है। आतंकवाद निरोधक कड़े कानूनों की कमी साफ दिखती है। आतंकियों के वित्तीय संसाधन अभी भी जीवित हैं। पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद और घुसपैठ की समस्या बड़ी चुनौती है। इन सबसे बढ़ कर भारत में सामरिक संस्कृति का अभाव जानलेवा हो जाता है।

अमेरिका में 9/11 के आतंकी हमले के बाद आतंकवाद निरोधी केंद्र (एनसीटीसी) सभी एजेंसियों में समन्वय का काम करता है। साल 2001 में हुए दुनिया के सबसे बड़े आतंकी हमले से सबक लेते हुए अमेरिका ने देश की पूरी सुरक्षा व्यवस्था का पुनरावलोकन करते हुए सुरक्षा एजेंसियों के कामकाज को व्यवस्थित और जिम्मेदारियों को सुनिश्चित किया। 2002 में अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने अमेरिका की सुरक्षा के लिए एकल केंद्रीकृत- डिपार्टमेंट ऑफ होमलैंड सिक्योरिटी तैयार किया। इस समय आतंकवाद के खिलाफ भारत की तैयारियों के स्तर का विश्लेषण किया जाए तो आतंकवाद विरोधी एजेंसियों का काम सूचना एकत्रित करना, अभियान चलाना, जांच करना और अभियोजन शामिल है। मुंबई हमले के बाद हमारा सूचना तंत्र अभी भी नाकाम नजर आता है। हमले की आशंका और सूचना के बाद भी यह पता लगाना मुश्किल होता है कि हमला किस जगह होगा और इसी कारण आतंकी अपने इरादों में कामयाब हो जाते हैं। भारत में आतंकी हमलों के सूत्रधार हिजबुल मुजाहिदीन सरगना सैयद सलाउद्दीन, जैश-ए-मोहम्मद का मुखिया मसूद अजहर, दाऊद इब्राहीम और मुंबई हमले के लिए आतंकियों के प्रशिक्षण का जिम्मा संभालने वाले जकीउर रहमान लखवी पड़ोसी देश में खुलेआम घूम रहे हैं, लेकिन उन्हें गिरफ्तार करने या मार गिराने में भारत अभी तक कामयाब नहीं हो पाया है।

पर हमला हुआ है। निरंकारियों को निशाना बनाकर धार्मिक भावनाएं आसानी से भड़काई जा सकती हैं, क्योंकि मुख्यधारा के सिखों से वे कुछ भिन्न हैं। इसी भिन्नता का उपयोग भिंडरांवाले ने अस्सी के दशक में पृथकतावादी खालिस्तान आंदोलन की जड़ें मजबूत करने के लिए किया था। निरंकारियों के धर्मस्थल पूरे देश में फैले हुए हैं, जहां नियमित रूप से उनके छोटे-बड़े जमावड़े होते रहते हैं। आमतौर से इनमें सुरक्षा के लिए संगठन के ही निहत्थे स्वयंसेवक नियुक्त होते हैं, अंतः ये हमेशा हमले के आसान लक्ष्य हो सकते हैं।

पुलिस और खुफिया एजेंसियों ने इसके आतंकी वारदात होने की पुष्टि कर दी है। तफ्तीश से ही स्पष्ट होगा कि इसमें किस आतंकी संगठन का हाथ है, पर इतना तो तय हो गया है कि पंजाब को फिर से आतंकवाद की अंधी भूल-भुलैया में धकेलने की कोशिश की जा रही है।

धार्मिक प्रतीकों को उभारकर अलग पहचान का आंदोलन खड़ा करना तो आसान है, पर राज्य के समर्थन के बिना इसे लंबे समय तक चला पाना मुश्किल होता है। खालिस्तान आंदोलन के जनक को भी राज्य के विभिन्न अंगों द्वारा प्रारंभ में खुला, फिर ढका समर्थन और बाद में असहाय किस्म का प्रतिरोध मिला। नतीजतन अपने बनाए भस्मासुर को नष्ट करने के लिए भारतीय राज्य को ऑपरेशन ब्लू स्टार जैसी भयानक कार्रवाई करनी पड़ी और उसके दुःस्वप्नों से हम आज तक उबर नहीं पाए हैं। सौभाग्य से अभी तक राज्य के किसी अंग या राजनीतिक दल द्वारा हाल के समय-समय पर खालिस्तानी आंदोलन को खड़ा करने के किसी प्रयास को समर्थन मिलने का कोई सुबूत नहीं है, फिर भी संवेदनशीलता और निरंतर सतर्कता की जरूरत है।

गंभीर भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरे और जनता द्वारा पूरी तरह नकार दिए गए अकालियों की फिलहाल वापसी के आसार नजर नहीं आ रहे हैं। ऐसे में, आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि वे एक बार फिर चरमपंथियों के आगे समर्पण कर दें और उनकी बैसाखी पकड़ वैतरणी पार करने की कोशिश करें। पिछली बार उनका शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (एसजीपीसी) पर नियंत्रण था और बिना किसी गंभीर प्रतिरोध के सिखों के पवित्रतम स्थल स्वर्ण मंदिर पर खालिस्तानियों का कब्जा हो गया था। अब भी एसजीपीसी पर अकालियों का ही नियंत्रण है और उम्मीद करनी चाहिए कि वे पिछली गलती से सीखेंगे और अपने तात्कालिक स्वार्थ साधने के लिए चरमपंथियों को तश्तरी में रखकर गुरुद्वारे नहीं सौंपेंगे।

जनता की याद्दाश्त कमजोर होती है, पर उम्मीद की जानी चाहिए कि सरकार खालिस्तानी हिंसा से निपटते समय की गई पिछली गलतियों को नहीं भूली होगी। तब सरकार ने सही समय पर फैसला न कर पाने की अपनी आदत के कारण स्थितियों को बिगड़ने का मौका दिया था। अंतिम मौका 1983 में मिला, जब स्वर्ण मंदिर के बाहर डीआईजी अटवाल की हत्या से उबाल खाई पंजाब पुलिस को सरकार ने गुरुद्वारे में घुसकर कार्रवाई करने से रोक दिया और एक ही वर्ष में वहां फौज भेजनी पड़ी। खालिस्तानियों को अब भी पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आईएसआई की मदद हासिल होगी, मगर इस बार सीमा पर तारबंदी और बेहतर नियंत्रण के कारण उसका काम मुश्किल हो गया है। इसका भी कानून का पालन कराने वाली एजेंसियों को लाभ होगा।

पंजाब के पिछले अनुभवों के साथ हमें पाकिस्तान के अनुभवों से भी सबक लेना चाहिए, जहां धार्मिक कट्टरपंथियों के सामने राज्य द्वारा नियमित रूप से समर्पण करते-करते अब एक ऐसी स्थिति आ गई है, जब वे गाहे-बगाहे पूरी राज्य मशीनरी को ठप करने लगे हैं। पिछले दिनों 72 घंटों तक बंद रहने के बाद पाकिस्तान में जिंदगी बमुश्किल लंगड़ाती हुई सामान्य हो पाई। 31 अक्तूबर की दोपहर सुप्रीम कोर्ट ने विवादास्पद ईश निंदा कानून के तहत पिछले नौ वर्षों से फांसी का इंतजार कर रही ईसाई महिला आसिया बीबी को रिहा कर दिया और जैसी कि आशंका थी, इस्लामी कट्टरपंथियों ने पूरे पाकिस्तान को बंधक बना लिया।

भारत में पिछले कुछ सालों में साइबर हमले तेजी से बढ़े हैं। राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2013 से अस्तित्व में है, जिसका काम देश में इंटरनेट और डिजिटल प्रणालियों को सुरक्षित बनाना है। लेकिन हकीकत यह है कि सुरक्षा नीति के प्रमुख उद्देश्य को स्थापित करने के लिए महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढांचा अभी तक नहीं बन पाया है। बैंक, शेयर बाजार, हवाई यातायात और रक्षा प्रतिष्ठानों में हैकर कई बार सेंध लगा चुके हैं। यह गंभीर चुनौती है।

मुंबई हमले के लिए आतंकियों ने समुद्री रास्ता चुना था। इस हमले के एक दशक बीत जाने के बाद भी तटीय सुरक्षा एकीकृत नहीं है, जिससे एक-एक बोट का हिसाब रखना मुश्किल है। तटीय सुरक्षा के इंतजाम नाकाफी होने के कारण बड़े शहरों समेत कच्छ से लेकर बलसाड़ तक बने भारत के विशाल औद्योगिक संयंत्रों पर आतंकी हमलों का खतरा बना हुआ है। जाहिर है, भारतीय सुरक्षा को पुख्ता करने के लिए आंतरिक और बाह्य मोर्चों पर अभी बहुत काम करने की जरूरत है।

मुंबई हमले के दस साल बाद (हिन्दुस्तान)

क्या आपको याद है कि कल मुंबई हमले की 10वीं बरसी है? अगर नहीं, तो कृपया एक पल को ठहरें और सोचें कि हम हिन्दुस्तानी जिस तरह बड़ी से बड़ी आपदा-विपदा को बिसरा देते हैं, उससे सिर्फ हमारा नुकसान होता है। सिकंदर से आज तक जितने आक्रांता आए, उनकी सफलताएं उनके रण-कौशल से कहीं ज्यादा हमारी इस कुटेव की उपज थीं।

यह ठीक है कि गुजरे 10 सालों में देश के किसी हिस्से पर मुंबई जैसा हौलनाक हमला फिर नहीं हुआ, मगर दहशतगर्दों की रक्त-पिपासा से देश का कोई हिस्सा अछूता भी नहीं रहा। इस दौरान उन्होंने सेना की छावनियों, वायु सेना बेस, धार्मिक स्थलों, तीर्थयात्रियों और अदालत तक को नहीं बख्शा। पिछले हफ्ते अमृतसर के पास निरंकारी सत्संग पर हमला बोल उन्होंने एक बार फिर हमारी राष्ट्रीय अस्मिता को चुनौती दी है। क्या यह शर्मनाक नहीं कि हम कश्मीर की समस्या तो हल नहीं कर पाए, उल्टे पंजाब में पुन: आतंकवाद की चिनगारियां फूटती देख रहे हैं?

निरंकारी भवन पर आतंकवादी आक्रमण के बाद सभी पार्टियों के प्रवक्ता पाकिस्तान ग्रंथि पर अपनी रटी-रटाई रवायतों के साथ हाजिर हैं, मगर ठोस हल सिरे से लापता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि पाकिस्तान की एजेंसियां भारत में अव्यवस्था फैलाए रखना चाहती हैं। यह भी सच है कि पड़ोसी मुल्क की समूची राजनीति सिर्फ भारत विरोध पर टिकी हुई है। हाल इतना बेहाल है कि वहां चुनाव तक कश्मीर के मुद्दे पर लड़े और लड़ाए जाते हैं। सवाल उठता है, सियासी संगठनों और सुरक्षा एजेंसियों के इस नापाक पाकिस्तानी गठजोड़ से कैसे जूझा जाए?

हमारे यहां के बड़बोलों के पास इस व्याधि का रामबाण इलाज है। वे शेखी बघारते हैं कि पाक पर हमला कर उसके इरादों को सदा-सर्वदा के लिए जमींदोज कर दिया जाए। यह बात सुनने में जितनी अच्छी लगती है, दरअसल उतनी प्रभावी नहीं है। कश्मीर के कबाइली हमले से कारगिल तक का इतिहास गवाह है कि पड़ोसी ने जब भी हमला किया, उसे मुंह की खानी पड़ी। 1971 में तो इंदिरा गांधी ने उसे दो टुकड़ों में ही बांट दिया था, पर नतीजा क्या निकला? पाक ने समझ लिया, हम सीधी लड़ाई में हिन्दुस्तान को नहीं हरा सकते। पिछले चार दशक से वह 'छद्म युद्ध' के सहारे हमारा खून बहा रहा है। हमारे हमलावर हमेशा से ऐसा करते आए हैं।

समझदार कहा करते हैं कि मैदानी जंग तो सिर्फ बहाना होती है। असल हार-जीत का फैसला तो टेबल पर आमने-सामने बैठकर किया जाता है। हर युद्ध के बाद अगर सुलह-सफाई करनी ही है, तो क्यों न पहले ही कर ली जाए? ऐसा नहीं है कि भारतीय प्रधानमंत्रियों ने इससे कोई संकोच किया है। जवाहरलाल नेहरू से नरेंद्र मोदी तक तमाम भलमनसाहत भरी कोशिशें हुईं, पर वे भी खेत रहीं। अब अकेला उपाय बचता है कि पाकिस्तान को कूटनीतिक रूप से अलग-थलग कर दिया जाए। विश्व बिरादरी को समझाया जाए कि हम पड़ोसी नहीं बदल सकते, पर बराए मेहरबानी उसका नजरिया बदलने में हमारी मदद करें। 26/11 के बाद की घटनाएं साक्षी हैं कि 10 वर्षों में कांग्रेस और भाजपा, दोनों की हुकूमतें इस मकसद में कामयाबी नहीं हासिल कर सकीं। तय है, रास्ता लंबा है और हमारे कूटनीतिज्ञों को अभी बहुत प्रयास करने बाकी हैं, पर इस दौरान क्या हम अपनी आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त नहीं कर सकते थे? इस मोरचे पर इतनी बेबसी क्यों है?

याद करें, आतंकवाद से लड़ने के लिए बड़े जोर-शोर से एनआईए यानी राष्ट्रीय जांच एजेंसी का गठन किया गया था। माना गया था कि यह त्वरित कार्रवाई करेगी। इसके जरिए हम न केवल पुरानी आतंकवादी घटनाओं की समीक्षा कर सकेंगे, बल्कि आगे के लिए सार्थक रणनीति भी बना सकेंगे। दुर्भाग्यवश, एनआईए को भी सरकारी तोता बना दिया गया। भरोसा न हो, तो मालेगांव और समझौता एक्सप्रेस हमलों की कार्रवाई का हश्र देख लें। सवाल उठना लाजिमी है कि नई दिल्ली की हुकूमत में बदलाव के साथ इस एजेंसी का रुख कैसे बदल गया? क्या वह पहले सियासी दबाव का शिकार थी या आज ऐसा है? उत्तर चाहे जो हो, पर परिणाम समान रूप से विनाशकारी है।

ऊपर से सितम यह कि हिन्दुस्तानी सुरक्षा एजेंसियों के बीच भी तालमेल की बेहद कमी है। एक उदाहरण, पठानकोट स्थित वायु सेना अड्डे पर हमले के दौरान एक सनसनीखेज खुलासा हुआ था। गुरदासपुर के पुलिस अधीक्षक सलविंदर सिंह ने दावा किया था कि मुझे उन्हीं आतंकवादियों ने पकड़ लिया था, जिन्होंने बाद में इस हरकत को अंजाम दिया। जांचकर्त्ताओं ने सलविंदर सिंह का बयान संदिग्ध पाया, पर उनके द्वारा दी गई हमले की चेतावनी अनसुनी क्यों कर दी गई? यही नहीं, ऑपरेशन के दौरान जिस तरह राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड और वायु सेना के गरुड़ कमांडो के बीच तालमेल की कमी की खबरें आईं, वे डराती हैं।

इस मुकदमे के दौरान अदालत में जो सवाल-जवाब हुए, उनसे पूरी उम्मीद थी कि आसिया रिहा हो जाएगी और तहरीक-ए-लब्बैक पाकिस्तान जैसी कट्टरपंथी जमातों ने अपने इरादे पहले से ही साफ कर दिए थे। उन्होंने सुनवाई करने वाले तीनों जजों को खुलेआम चेतावनी देनी शुरू कर दी थी कि आसिया को रिहा करने पर उन्हें खामियाजा भुगतना पड़ेगा और फैसला आते ही उन्होंने पूरे देश को बंधक बना दिया।

बंद के दौरान तहरीक-ए-लब्बैक पाकिस्तान के नेताओं ने टीवी पर प्रसारित हो रहे भाषणों में कहा था कि फैसला सुनाने वाले जज वाजिबुल कत्ल या हत्या किए जाने योग्य हैं। उन्होंने सेनाध्यक्ष जनरल बाजवा के सहयोगियों से भी उन्हें मार डालने की अपील की। पहले तो प्रधानमंत्री इमरान खान ने उन्हें देख लेने की धमकी दी और बाद में पूरी तरह समर्पण करते हुए उनके साथ समझौता कर लिया। नेशनल असेंबली में विरोधी पक्ष के एक सदस्य ने व्यंग्य करते हुए उनकी इस दुर्दशा को दैवीय न्याय कहा। आखिर पिछले साल तहरीक-ए-लब्बैक के ऐसे ही आंदोलन को इमरान का खुला समर्थन हासिल था, जनरल बाजवा की तरफ से आंदोलनकारियों को नोट बांटते फौजी अफसरों के विजुअल वायरल हुए थे। सरकारी समर्पण का नतीजा है कि रिहाई के बावजूद आसिया बीबी की जान बचाने के लिए कनाडा में शरण लेने की कोशिश अब तक सफल नहीं हो सकी है।

यह एक उदाहरण ही इस समझ को मजबूत करने के लिए काफी होगा कि धार्मिक कट्टरपंथी बहुत दिनों तक अपने आकाओं के नियंत्रण में नहीं रहते। पंजाब में भी शुरू में अकालियों के मुकाबले जिन लोगों ने भिंडरांवाले को खड़ा किया था, जल्द ही वह उनके काबू से बाहर हो गया। इस बार हमें पुरानी गलती से बचना चाहिए। न सिर्फ पंजाब में, बल्कि देश के दूसरे हिस्सों में धार्मिक आंदोलनों से निपटते समय भी सरकार को पाकिस्तानी अनुभव से सीखना चाहिए।

भारत एक विशाल देश है। यहां दिल्ली और सूबाई राजधानियों में अक्सर अलग-अलग विचारधाराओं की सरकारें बनती हैं। यह जरूरी नहीं कि उनके विचार मेल खाते हों, परंतु राष्ट्रभक्ति की भावना भी क्या अलग-अलग हो सकती है? जिस संविधान की शपथ लेकर हमारे हुक्मरां सिंहासनों पर विराजते हैं, वह तो एक ही है और किसी मामले में न सही, कम से कम आतंकवाद के मसले पर वे एक राय कायम कर सकते हैं? अफसोस, इसका उल्टा हो रहा है। पिछले दिनों भारतीय राजनीति के दो दिग्गजों ममता बनर्जी और चंद्रबाबू नायडू ने एलान किया कि उनके द्वारा शासित राज्यों में सीबीआई को सहयोग नहीं दिया जाएगा। यह संविधान की संघीय भावना के प्रतिकूल है। कारण? आज सीबीआई का मसला है, तो कल एनआईए, सेना, केंद्रीय अर्द्धसैनिक बलों, रेलवे और अन्य राष्ट्रीय एजेंसियों की राह में भी रोड़े अटकाए जा सकते हैं। जिस देश में 2005 से 2016 के बीच हुए आतंकवादी हमलों में 700 से अधिक भारतीय खेत रहे हों, उसके नेताओं को यह रवैया शोभा नहीं देता।

मुंबई हमले के 10 साल गुजरने के बाद भी अगर देश के आम आदमी की टांगें दहशत से कंपकंपाती हों, तो उसके वोट से राज करने वालों को अपनी कथनी और करनी का आकलन जरूर करना चाहिए।

GS World टीम...

सारांश

- पिछले दस साल में भारत में जिस पुख्ता सुरक्षा की जरूरत महसूस की जाती रही है, उस पर हासिल परिणाम संतोषजनक नहीं रहा है। उपलब्धि के नाम पर देश में राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआइए) का गठन हुआ।
- आतंकवाद जैसे गंभीर मामलों की जांच इसके गठन का मकसद था और कई मामलों में यह एजेंसी सफल भी हुई। तटीय सुरक्षा को दुरुस्त किया गया। लेकिन राष्ट्रीय आतंकवाद निरोधक केंद्र (एनसीटीसी) बनाने की योजना राज्यों के विरोध के कारण आज तक परवान नहीं चढ़ सकी, जबकि यह सबसे जरूरी था।
- यों तो भारत कश्मीर में आतंकवाद की मार झेल ही रहा था, लेकिन 26 नवंबर, 2008 को देश की आर्थिक राजधानी मुंबई को आतंकवादियों ने जिस तरह निशाना बनाया, वह अकल्पनीय था। पाकिस्तान ऐसी दुश्मनी निभाएगा, किसी ने सोचा भी नहीं होगा।
- लश्कर-ए-तैयबा के सरगना हाफिज सईद ने इस हमले की साजिश रची थी और समुद्री रास्ते आतंकवादियों को भेज कर हमले को अंजाम दिया था। बहत्तर घंटे आतंकियों के साथ चली लड़ाई में एक सौ अस्सी से ज्यादा लोग मारे गए, बाईस विदेशी नागरिकों की भी इस हमले में जान चली गई और सत्रह सुरक्षाकर्मी शहीद हुए। घायलों का आंकड़ा तो तीन सौ के पार था। अरबों की संपत्ति खाक हुई।
- तब मुंबई हमले से हमारे खुफिया तंत्र की भी कमजोरी सामने आई थी। यह भी पता चला कि सरकारी एजेंसियों में तालमेल की किस कदर कमी थी, जिसकी वजह से मौके पर सुरक्षा बलों को पहुंचाने में घंटों निकल गए थे और तब तक मुंबई पुलिस के जवान ही मोर्चा संभालते रहे।
- अमेरिका पर हुए आतंकी हमले के बाद दुनिया के ज्यादातर देशों ने अपनी सुरक्षा को मजबूत करने और ऐसे हमलों से निपटने की रणनीति पर तत्काल काम शुरू कर दिया था। हमले के बाद अमेरिका ने अपनी सुरक्षा को अभेद्य बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी और उसी का नतीजा है कि फिर कभी अमेरिका पर आतंकी हमला नहीं हुआ।
- मुंबई हमले के बाद भी पाकिस्तान में पल रहे आतंकी संगठनों ने भारत में सैन्य ठिकानों पर एक बार नहीं, कई बार हमले कर अपनी मौजूदगी का अहसास कराया। हालांकि, इससे पहले भारत 2001 में भी संसद पर हमले की मार झेल चुका था, पर तब सुरक्षा के मोर्चे पर ऐसा कुछ नहीं हुआ, जिससे आतंकी दुबारा दुस्साहस नहीं कर पाते।
- अमृतसर जिले में राजासांसी के पास अदवीवाल गांव में रविवार को निरंकारी सत्संग पर जो आतंकी हमला हुआ है, वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि पंजाब में आतंकवाद फिर से पैर पसार रहा है। भले इस हमले की जड़ें दशकों पुराने निरंकारी-सिख टकराव में बताई जा रही हों, लेकिन अब यहां आतंक फैलाने में कश्मीर में सक्रिय गुटों पर शक जा रहा है।
- अस्सी के दशक में पंजाब ने जिस तरह का आतंकवाद झेला है, उसके घाव आज भी हरे हैं। हजारों बेगुनाह लोग आतंकवदियों की हिंसा का शिकार हुए। हालांकि, पंजाब से आतंकवादियों के सफाए के बाद कुछ साल पहले तक लग रहा था कि वहां अब आतंकवाद का खात्मा हो चुका है।
- जनवरी, 2016 में पठानकोट के वायुसेना स्टेशन पर आतंकी हमला हुआ था। इसके बाद जनवरी, 2017 में बठिंडा की मौड़ मंडी में कार धमाके में तीन लोग मारे गए थे। फिर गुरदासपुर और जलंधर में आतंकी हमले देखने को मिले। हाल में थलसेनाध्यक्ष और खुफिया एजेंसियों ने भी राज्य में आतंकी हमले को लेकर आगाह किया था।
- अमृतसर में 13 अप्रैल, 1978 को जरनैल सिंह भिंडरांवाले की एक सभा में निरंकारियों और निहंगों के बीच खूनी संघर्ष में तेरह सिख मारे गए थे। उसके बाद से पंजाब में आतंकवाद पनपा। तब से निरंकारियों और सिखों के बीच टकराव का यह सिलसिला कभी नहीं थमा। अगर ऐसा है तो यह पंजाब के लिए बड़े खतरे का संकेत है।
- ब्रिटेन सहित यूरोप के कई देशों और अमेरिका में खालिस्तान समर्थक आज भी सक्रिय हैं और ये समूह-संगठन समय-समय पर अपनी मौजूदगी का अहसास कराते रहते हैं। इस साल अगस्त में अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य के युबा शहर में खालिस्तान समर्थकों ने दिल्ली सिख गुरद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष और शिरोमणि अकाली दल के नेता मंजीत सिंह जी पर जानलेवा हमला कर दिया था।
- लंदन में भी खालिस्तान समर्थकों ने स्वतंत्रता दिवस पर जुलूस निकालने की कोशिश की थी और खालिस्तान की मांग को लेकर नारे लगाए थे। ये घटनाएं बताती हैं कि अलग खालिस्तान की मांग को लेकर सुगबुगाहट फिर तेज हो रही है।
- अंसार गजवत-उल-हिंद का मुखिया जाकिर मूसा है और उसकी शिक्षा पंजाब में हुई है। खुफिया एजेंसियों के संज्ञान में इन खतरों के होने के बाद भी जाकिर मूसा पंजाब में प्रवेश करने में कामयाब हो गया और इसकी पुष्टि पंजाब पुलिस ने भी की।
- दरअसल 26 नवंबर, 2008 को मुंबई हमले के बाद खुफिया तंत्र के कायापलट की बात कही गई थी। 2008 में संसद द्वारा राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम भी बनाया गया था। इस अधिनियम के अनुसार एनआईए का अधिकार क्षेत्र समवर्ती है।
- इससे केंद्र देश के किसी भी भाग में आतंकवादी हमले, देश की एकता और अखंडता के खतरे, बम विस्फोटों, हवाई जहाज या समुद्री जहाज के अपहरण और परमाणु प्रतिष्ठानों पर हमलों से संबंधित मामलों की जांच कर सकता है। इसके अतिरिक्त जाली मुद्रा, मानव तस्करी, ड्रग्स या मादक पदार्थ, संगठित अपराध, परमाणु ऊर्जा अधिनियम का उल्लंघन, सामूहिक विनाशक हथियार से संबंधित अपराध भी इसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

- इस समय देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी उठाने वाली प्रमुख एजेंसियों में खुफिया ब्यूरो, रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (रॉ), नेशनल टेक्नीकल रिसर्च आर्गेनाइजेशन (एनटीआरओ), डिफेंस इंटेलीजेंस एजेंसी (डीआईए), सैन्य खुफिया इकाई, राजस्व खुफिया निदेशालय (डीआरआई) और केंद्रीय आर्थिक खुफिया ब्यूरो (सीईआईबी) शामिल हैं।
- था। एजेंसियों में समन्वय का अभाव इतना ज्यादा है कि वे सूत्र तक उजागर नहीं करतीं और निर्णायक सूचनाओं को अपने पास ही दबाकर रखती हैं ताकि उसका श्रेय खुद ले सकें। वर्तमान में आतंकवाद निरोधक ऑपरेशनों के लिए विभिन्न राज्यों की पुलिस के साथ आईबी समन्वय की भूमिका निभाती है। परंतु एक ही समय में कई जगह ऑपरेशन एक साथ करना हो, तो इसके लिए कोई एकीकृत कमान नहीं है।
- देश में आतंकवाद से निपटने के लिए एनसीटीसी या राष्ट्रीय आतंकवाद निरोधक केंद्र को तत्कालीन सरकार ने मार्च 2012 में मंजूरी दी थी। उस समय इसे सभी राज्यों की मंजूरी मिलना आवश्यक बताया गया था।
- लेकिन बिहार, तमिलनाडु, ओड़िशा, गुजरात और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों के विरोध के बाद इसे रोक लिया गया। इसे आईबी के मातहत काम करना था और इसके सहायक अंगों में एनआईए, नैटग्रिड, एनएसजी और एएमसी का होना था। इस समय भारत में आतंकवाद से निपटने के लिए एकल केंद्र नहीं है।
- अमेरिका में 9/11 के आतंकी हमले के बाद आतंकवाद निरोधी केंद्र (एनसीटीसी) सभी एजेंसियों में समन्वय का काम करता है। साल 2001 में हुए दुनिया के सबसे बड़े आतंकी हमले से सबक लेते हुए अमेरिका ने देश की पूरी सुरक्षा व्यवस्था का पुनरावलोकन करते हुए सुरक्षा एजेंसियों के कामकाज को व्यवस्थित और जिम्मेदारियों को सुनिश्चित किया। 2002 में अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने अमेरिका की सुरक्षा के लिए एकल केंद्रीकृत- डिपार्टमेंट ऑफ होमलैंड सिक्योरिटी तैयार किया।
- भारत में आतंकी हमलों के सूत्रधार हिजबुल मुजाहिदीन सरगना सैयद सलाउद्दीन, जैश-ए-मोहम्मद का मुखिया मसूद अजहर, दाऊद इब्राहीम और मुंबई हमले के लिए आतंकियों के प्रशिक्षण का जिम्मा संभालने वाले जकीउर रहमान लखवी पड़ोसी देश में खुलेआम घूम रहे हैं, लेकिन उन्हें गिरफ्तार करने या मार गिराने में भारत अभी तक कामयाब नहीं हो पाया है।
- राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2013 से अस्तित्व में है, जिसका काम देश में इंटरनेट और डिजिटल प्रणालियों को सुरक्षित बनाना है। लेकिन हकीकत यह है कि सुरक्षा नीति के प्रमुख उद्देश्य को स्थापित करने के लिए महत्त्वपूर्ण बुनियादी ढांचा अभी तक नहीं बन पाया है। बैंक, शेयर बाजार, हवाई यातायात और रक्षा प्रतिष्ठानों में हैकर कई बार सेंध लगा चुके हैं।

आतंकवाद

- आतंकवाद एक प्रकार के माहौल को कहा जाता है। इसे एक प्रकार के हिंसात्मक गतिविधि के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो कि अपने आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं विचारात्मक लक्ष्यों की प्रतिपूर्ति के लिए गैर-सैनिक अर्थात् नागरिकों की सुरक्षा को भी निशाना बनाते हैं।
- गैर-राज्य कारकों द्वारा की गई राजनीतिक, वैचारिक या धार्मिक हिंसा को भी आतंकवाद की श्रेणी का ही समझा जाता है। अब इसके तहत गैर-कानूनी हिंसा और युद्ध को भी शामिल कर लिया गया है। अगर इसी तरह गतिविधि आपराधिक संगठन द्वारा चलाने या को बढ़ावा देने के लिए करता है तो सामान्यत: उसे आतंकवाद नहीं माना जाता है, यद्यपि इन सभी कार्यों को आतंकवाद का नाम दिया जा सकता है।
- भारत बहुत समय से आतंकवाद का शिकार हो रहा है। भारत के कश्मीर, नागालैंड, पंजाब, असम, बिहार आदि विशेषरूप से आतंक से प्रभावित रहे हैं। यहाँ कई प्रकार के आतंकवादी जैसे पाकिस्तानी, इस्लामी, माओवादी, नक्सली, सिख, ईसाई आदि हैं।
- जो क्षेत्र आज आतंकवादी गतिविधियों से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं, उनमें जम्मू-कश्मीर, मुंबई, मध्य भारत (नक्सलवाद) और सात बहन राज्य (उत्तर पूर्व के सात राज्य) (स्वतंत्रता और स्वायत्तता के मामले में) शामिल हैं। अतीत में पंजाब में पनपे उग्रवाद में आतंकवादी गतिविधियां शामिल हो गयीं, जो भारत देश के पंजाब राज्य और देश की राजधानी दिल्ली तक फैली हुई थीं।
- आतंकवाद भारत की प्रमुख सबसे बड़ी समस्या है, जिसने भारतीय शासन-व्यवस्था को जर्जर कर दिया है। आतंकवाद ने भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों को प्रभावित किया है। अत: इसे दूर करना अत्यधिक आवश्यक है।
- आतंकवादी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सामान्यता विभिन्न प्रणालियों एवं तकनीकी को अपनाता है। जैसे-विमानों का अपहरण, राजनयिकों में प्रमुख हस्तियों का अपहरण, सार्वजनिक नेताओं की हत्या, तोड़-फोड़ करना और बम आदि रखना, जनता की आए दिन निर्मम हत्यायें करना आदि।
- आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधि (निरोधक) कानून मई, 1985 में बनाया गया, वर्तमान कानूनों में सशोधन किया गया। प्रथम संशोधन 'भारतीय दण्ड संहिता' की धारा-124 (क) में किया गया है, जिसमें सरकार के विरुद्ध किये गए कार्य को राजद्रोह माना गया है। द्वितीय संशोधन शस्त्र कानून में किया गया, जिसके अन्तर्गत जिस भी किसी के पास बिना लाइसेंस या अधिकार के शस्त्र पाये जाएंगे, उन्हें तीन साल की सजा दी जाएगी।
- आतंकवाद के बढ़ते खतरे से निपटने के लिए पश्चिम जर्मनी ने जी. एस.जी.-9, ब्रिटेन ने एस.ए.एस. और अमरीका ने ग्रीन बेरेटस तथा रेंजर्स का गठन किया है। इजरायल के पास भी 'कमाण्डो बल' है। परन्तु भारत में आतंकवाद से निपटने के लिए कोई कारगर संगठन नहीं है।
- आतंकवादी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्म या मजहब का सहारा लेते हैं ताकि अन्य सहधर्मी लोग भी उनके झाँसे में आकर उनके कार्यों में सहयोग प्रदान करें। यही कारण है कि विभिन्न राष्ट्रों में सामूहिक प्रयत्न के बावजूद आतंकवाद की समस्या को जड़-मूल से समाप्त नहीं किया जा सका है।
- भारत आरंभ से ही आतंकवादियों के निशाने पर है। सन् 2008 का मुंबई आतंकी हमला इसका ज्वलंत प्रमाण है। मुंबई में उससे पूर्व में कई आतंकवादी हमले हो चुके हैं। आतंकवादियों ने राजधानी दिल्ली में भी कई हमले किए हैं। उन्होंने भारत के लोकतंत्र पर आघात करने के उद्देश्य से संसद भवन को भी निशाना बनाया था, जिसे देश के रक्षकों ने विफल कर दिया।
- कुछ लोग अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आतंक का सहारा लेते हैं। भारत में पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद इसी श्रेणी में आता है। आतंकवाद की जड़ में कुछ कथित धार्मिक मान्यताएँ भी हैं जो व्यक्ति विशेष को हिंसा का मार्ग चुनने के लिए प्रेरित करती हैं।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. आतंकवादी संगठनों के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए?
   1. बोकोहराम नाइजीरिया का प्रमुख आतंकी संगठन है।
   2. अबू सय्याफ दक्षिण-पूर्व एशिया में फिलीपींस देश में आतंकी संगठन है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-c)

2. भारत में आतंकी घटनाओं के अन्वेषण से संबंधित एजेंसी कौन-सी है?
   (a) सीबीआई
   (b) एनआईए
   (c) सीवीसी
   (d) एनडीएमसी

   (उत्तर-b)

3. भारत में आतंकी घटनाओं के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. असम क्षेत्र में उल्फा वर्ष 1980 के दशक से सक्रिय रहा है।
   2. परेश बरूवा, अरविंद राजखोवा, अनूप चेतिया उल्फा संगठन से जुड़े प्रमुख नेता रहे हैं।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-c)

4. इजराइल-फिलिस्तीन क्षेत्र में निम्न में से कौन-सा संगठन में सक्रिय है?
   (a) अलनुस्त्रा-अल-शवाब
   (b) हमास
   (c) अल अकादीनी
   (d) जमाइते नवाबदी

   (उत्तर-b)

5. आंतरिक सुरक्षा की सबसे बड़ी जिम्मेदारी पुलिस की होती है, लेकिन राज्य पुलिस सुधारों को लागू करने में बुरी तरह नाकाम रहे हैं। विश्लेषण कीजिए।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. हाल में अंतर्राष्ट्रीय चर्चा (International news) में लाइबेरिया के आने का कारण था?
   (a) धार्मिक कट्टरवाद (Religious Fundamentalism) से सम्बन्धित आतंकवादियों को शरण देना।
   (b) उत्तरी कोरिया को कच्चे यूरेनियम की आपूर्ति (Supply) करना।
   (c) दीर्घकाल से चल रहा गृहयुद्ध (Civil war), जिसके कारण हजारों लोगों की मृत्यु हुई या वे विस्थापित हुए।
   (d) मादक पदार्थ बनाने वाली फसलों (Drug- yielding Crops) की पैदावार तथा मादक पदार्थों की तस्करी।

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2004, उत्तर-c)

2. सितम्बर, 2002 में जोहान्सबर्ग में आयोजित होने वाले सभी देशों के विश्व शिखर सम्मेलन का विषय होगा?
   (a) एड्स नियंत्रण शिखर
   (b) विश्वव्यापक आतंकवाद
   (c) मानवाधिकार
   (d) सतत् विकास

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2002, उत्तर-d)

3. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए- दिसंबर, 1999 में संपन्न WTO की मंत्रियों की बैठक असफल रही, क्योंकि इसने व्यापार को जोड़ने का प्रयास किया?
   1. श्रमिक संबंधी समस्याओं से
   2. पर्यावरण संबंधी समस्याओं से
   3. आतंकवाद संबंधी समस्याओं से
   4. ऋण संबंधी समस्याओं से

   इन कथनों में से कौन-कौन से कथन सही हैं?
   (a) 1, 3 और 4 (b) 1 और 2
   (c) 2 और 3 (d) 2 और 4

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2000, उत्तर-b)

4. आतंकवादी गतिविधियों और परस्पर अविश्वास ने भारत-पाकिस्तान संबंधों को धूमिल बना दिया है। खेलों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान जैसी मृदु शक्ति किस सीमा तक दोनों देशों के बीच सद्भाव उत्पन्न करने में सहायक हो सकती है? उपयुक्त उदाहरणों के साथ चर्चा कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2015)

5. ''भारत में बढ़ते हुए सीमापारीय आतंकी हमले और अनेक सदस्य-राज्यों के आंतरिक मामलों में पाकिस्तान द्वारा बढ़ता हुआ हस्तक्षेप सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) के भविष्य के लिए सहायक नहीं है।'' उपयुक्त उदाहरणों के साथ स्पष्ट कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2016)

GS World
Committed To Excellence

भारतीय राजनीति में कश्मीर का संकट

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (संविधान एवं राजव्यवस्था) से संबंधित है।

जम्मू-कश्मीर विधानसभा को अचानक भंग करने के राज्यपाल के फैसले को लेकर स्वाभाविक ही राजनीति शुरू हो गई है। राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने अचानक विधानसभा भंग कर दी। तर्क दिया गया कि राज्य में सुरक्षा और लोकतंत्र बहाली के लिए यह कदम जरूरी था। अब चुनाव के बाद ही नई सरकार का गठन हो सकेगा। इस पर सवाल उठने शुरू हो गए हैं। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'जनसत्ता', 'नवभारत टाइम्स' तथा 'दैनिक जागरण' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

मुंतजिर-ए-वादा (जनसत्ता)

भारत विभाजन के साथ ही अपने भौगोलिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक कारकों व सामरिक महत्त्व के कारण कश्मीर की स्थिति विशिष्ट हो गई। अपनी इसी विशिष्टता के कारण कश्मीर और वहां की जनता को भारतीयता और जनतांत्रिकता के साथ जोड़ने के लिए एक संवेदनशील राजनीति की जरूरत थी। लेकिन आजादी के बाद से ही दिल्ली दरबार वाली केंद्र सरकार ने वहां दांव-पेच और घुसपैठ की जो राजनीति शुरू की वह कांग्रेस व दिल्ली के स्वरूप के रूप में 'भारत' की राजनीति के तौर पर देखा गया और भारत का यह स्वर्ग भारतीयता और जनतांत्रिकता से दूर होता गया। शेख अब्दुल्ला की सरकार को भंग करने से लेकर आज के दौर में विधानसभा भंग करने के फैसले तक में हम देखते हैं कि येन-केन-प्रकारेण सत्ता हासिल करने की कवायद वहां लोकतंत्र को मजबूत होने नहीं दे रही। कांग्रेस और भाजपा की महत्त्वाकांक्षी राजनीति का जो असर आम कश्मीरियों को भुगतना पड़ रहा है उसकी पड़ताल करता बेबाक बोल।

सरकारें क्या सोशल मीडिया से बनती हैं? न ही मैं ट्वीट करता हूं और न देखता हूं। मैंने बुधवार का दिन विधानसभा भंग करने के लिए इसलिए चुना क्योंकि कल पवित्र दिन था, ईद थी'। पीडीपी नेता महबूबा मुफ्ती सईद के बाद पीपुल्स कांफ्रेंस के नेता सज्जाद लोन ने भी भाजपा के समर्थन से सरकार बनाने का दावा पेश कर दिया तो जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल ने विधानसभा ही भंग कर दी। सत्यपाल मलिक ने उपर्युक्त शब्दों के साथ विधानसभा भंग करने के जो कारण दिए हैं वे शब्दश: सहेज कर रखने लायक हैं। इनका इस्तेमाल भारत के अन्य भूक्षेत्रों पर भी होना चाहिए जहां राजनीति तो बस दल-बदल ही है। विधानसभा भंग करने का कारण बताते हुए सत्यपाल मलिक कहते हैं, 'ये वे बल हैं जो जमीनी लोकतंत्र बिल्कुल नहीं चाहते थे और अचानक यह देखकर कि उनके हाथ से चीजें निकल रही हैं एक अपवित्र गठबंधन करके मेरे सामने आ गए। मैंने किसी के साथ पक्षपात नहीं किया। मैंने जो जम्मू-कश्मीर की जनता के पक्ष में था वह काम किया'। नेकां और पीडीपी के प्रेम पर रस्मअदायगी के तौर पर पाकिस्तान को भी ले आया गया और जब दो प्रेमियों ने अपने पवित्र प्रेम पर पाक के दाग को साबित करने की चुनौती दी गई तो शब्द-वापसी का भी कार्यक्रम पेश हुआ।

सत्यपाल मलिक। जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल के रूप में यह नाम सामने आते ही राष्टीय मीडिया की सुर्खियां बना। मलिक जैसे राजनीतिक रूप से सुलझे हुए व्यक्ति को इस अहम सूबे का मुखिया बनाने को उम्मीद की किरण के रूप में देखा गया। जब तक किसी ने दावा पेश नहीं किया था, तब तक तो सब कुछ ठीक था। लेकिन दावेदारी सामने आते ही अपवित्रता, फैक्स मशीन और पता नहीं क्या-क्या सामने आ गए।

अचानक फैसला (जनसत्ता)

जम्मू-कश्मीर विधानसभा को अचानक भंग करने के राज्यपाल के फैसले को लेकर स्वाभाविक ही राजनीति शुरू हो गई है। विपक्षी दल एक बार फिर केंद्र सरकार पर जनादेश चुराने का आरोप लगाने लगे हैं। दरअसल, बुधवार को जम्मू-कश्मीर में बहुत तेजी से घटनाक्रम बदला और पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, नेशनल कान्फ्रेंस और कांग्रेस पार्टी ने साथ मिल कर सरकार बनाने का फैसला किया। इस आशय का पत्र भी राज्यपाल को भेज दिया गया। सोशल मीडिया पर इसका प्रचार होने लगा। तभी रात में राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने अचानक विधानसभा भंग कर दी। तर्क दिया गया कि राज्य में सुरक्षा और लोकतंत्र बहाली के लिए यह कदम जरूरी था। अब चुनाव के बाद ही नई सरकार का गठन हो सकेगा। इस पर सवाल उठने शुरू हो गए कि जब भाजपा और पीडीपी का गठबंधन टूटा तभी विधानसभा भंग करने का एलान क्यों नहीं किया गया। इतने दिन तक क्या इसलिए उसे निलंबित रखा गया कि भाजपा को अपनी सरकार बनाने के समीकरण बिठाने का समय मिल जाए? और जब इस मामले में उसे कामयाबी नहीं मिली, तो उसे अचानक भंग करने का फैसला सुना दिया गया!

हालांकि राज्यपाल को यह अधिकार है कि वे स्थितियों के मद्देनजर अपने विवेक से विधानसभा को भंग कर सकते हैं। इसलिए अगर विपक्षी दल उनके फैसले को अदालत में चुनौती देना चाहते हैं, तो उसमें उन्हें कितनी कामयाबी मिलेगी, कहना मुश्किल है। पर यह सवाल तो अपनी जगह बना ही रहेगा कि जब विपक्षी दलों ने मिल कर नई सरकार गठित करने की पहल की और पीडीपी की तरफ से बहुमत संबंधी पत्र राज्यपाल को भेजा गया, तभी वे क्यों सक्रिय हुए और उन्हें लगा कि राज्य में सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है। फिर आनन-फानन उन्होंने विधानसभा भंग करने का फैसला सुना दिया। अगर उन्हें सरकार गठन का प्रस्ताव मिला, तो उस पर उन्होंने कोई विचार करना, संबंधित नेताओं से बातचीत करना जरूरी क्यों नहीं समझा। जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा संबंधी चुनौतियों से इनकार नहीं किया जा सकता। मगर इतने समय तक जब विधानसभा निलंबित थी, तब यह चुनौती बड़ी क्यों नहीं लगी। नई सरकार के गठन का प्रस्ताव मिलते ही यह चुनौती इतनी विकट क्यों हो गई? राज्यपाल के इस फैसले पर जम्मू-कश्मीर भाजपा का यह कहना कि नई सरकार के गठन की पहल चरमपंथियों के इशारे पर हुई थी, गले नहीं उतरता। यह चुने हुए प्रतिनिधियों के समर्थन से चुने हुए प्रतिनिधियों की सरकार बनाने का प्रस्ताव था, उसमें किसी की साजिश देखते हुए उसे खारिज कर देना लोकतांत्रिक प्रक्रिया नहीं कही जा सकती।

अव्वल तो जहां तक हो सके, मध्यवधि चुनाव से बचने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस तरह न सिर्फ प्रशासन की नाहक कवायद बढ़ती

चलिए हम मान लेते हैं कि आपने संविधान सम्मत फैसला लिया और हम संविधान के साथ चलने वालों में से हैं। लेकिन आपके इस फैसले और हर विरोधी पार्टी के साथ पाकिस्तान जोड़ देने के चलन का जो घातक परिणाम सामने आ सकता है, और आया भी है उस पर भी बात कर लें।

राज्यपाल ने जो फैसला किया और राज्य के मामलों से जुड़े नेता ने जो इस पूरी कवायद को पाकिस्तान से जोड़ दिया वह नया नहीं है। यह मामला अगर कर्नाटक का होता, बिहार का होता और मध्य प्रदेश का होता तो अन्य राजनीतिक विडंबनाओं की तरह इसे भी देख कर आगे की कार्रवाई पर नजर रखी जाती। लेकिन यह सब जहां हो रहा है वह कश्मीर है, और आज के समय का यह कड़वा सच है कि यह भारत के अन्य इलाकों की तरह सामान्य नहीं है। सामरिक दृष्टि से अहम इस इलाके की त्रासदी रही है कि इसे विशिष्ट बना कर रखा गया है, और भारत का लोकतंत्र वहां अभी भी एक भ्रम है। आज जब केंद्र में राजग की सरकार है और उसके द्वारा नियुक्त राज्यपाल ने जो वहां किया वह नया भी नहीं है। आजादी के बाद भारत की लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई कांग्रेस सरकार ने भी वहां यही किया था। आज नेशनल कांफ्रेंस ने अपना नाम पाकिस्तान से जोड़ने पर गहरी नाराजगी जताई और इसके सबूत मांगे। इसी नेशनल कांफ्रेंस का इतिहास कश्मीर में शेख अब्दुल्ला के साथ शुरू होता है। कश्मीर में किसान आंदोलन जैसी प्रगतिशील मुहिम शुरू करने वाले शेख अब्दुल्ला दिल्ली दरबार के द्वारा खलनायक बना दिए जाते हैं। शेख अब्दुल्ला की सरकार को भंग करने के साथ ही दिल्ली ने कश्मीर को विशिष्ट बनाने की जो नींव डाली आज उसपर अलगाववाद का भव्य किला बन गया है।

भारत से पाकिस्तान विभाजन और अपने भौगोलिक कारण से कश्मीर नए आजाद भारत का नाजुक अंग बन चुका था। लेकिन इस नाजुक अंग की ठीक से देखभाल कर लोकतांत्रिक रूप से मजबूत बना अपने पैरों पर खड़ा करने के बजाए दिल्ली दरबार ने घुसपैठ की राजनीति का रास्ता चुना। इस घुसपैठ की अवसरवादी राजनीति का बुरा असर हुआ कि कश्मीर भौगोलिक रूप से दिल्ली से जितना दूर था उस दूरी को 'भारत' की दूरी बना दी गई। इस वजह से कश्मीर में वैधानिकता और जनतांत्रिक प्रक्रिया शुरू होने में भयानक रुकावट आई। मिलीजुली जनतांत्रिकता की सियासत करने के बजाए येन-केन-प्रकारेण सत्ता हासिल करो और साम-दाम-दंड-भेद में से कुछ भी नहीं छोड़ो का ही रास्ता चुना गया।

यह दांव-पेच की राजनीति ही कश्मीर का सबसे बड़ा जख्म बनी जो आज तक भरा नहीं गया। इस तरह की राजनीति तत्काल तो आपकी जगह बना देती है, आप मजबूत स्थिति में दिखते हैं लेकिन इसकी वजह से लोकशाही बेदखल कर दी जाती है। सामूहिकता की भावना अलगाव में बदल जाती है और लोकतंत्र प्रपंचतंत्र बनकर रह जाता है। आजादी के बाद से कांग्रेस या दिल्ली दरबार के इसी दांव-पेच को 'भारत' करार देकर कश्मीरियों का लोकतंत्र से अलगाव हुआ। राजनीति एक राजनीतिक दल कांग्रेस की थी और नुकसान एक भूगोल, एक संस्कृति, एक समाज और एक अर्थशास्त्र जिसे सामूहिक रूप से भारत कहते हैं उसका हो रहा था।

अगर हम अमेरिका जैसे देशों की तुलना करें जहां लोकतंत्र लंबी परंपरा का हिस्सा रहा है वहीं भारत में इसे अभी परंपरा के रूप में विकसित करना है। आजादी के बाद से अब तक के छोटे से समय में ही दांव-पेच की राजनीति की वजह से कई बार लोकतंत्र को कुचला गया। खासकर कश्मीर जैसे विशिष्ट स्थिति वाले राज्य में घोर लापरवाही बरती गई। जनतांत्रिकता के जरिए भारतीयता से जुड़ाव नहीं करवाया गया। कांग्रेस या दिल्ली की राजनीति से अलगाव लोकतंत्र की पहचान के खिलाफ खड़ा हो गया। जो पहचान खुद को भारतीयता के साथ देख सकती थी वह कांग्रेस और दिल्ली के खिलाफ व 'भारत' के खिलाफ दिखाई जाने लगी।

अगर हम अमेरिका जैसे देशों की तुलना करें जहां लोकतंत्र लंबी परंपरा का हिस्सा रहा है वहीं भारत में इसे अभी परंपरा के रूप में विकसित करना है। आजादी के बाद से अब तक के छोटे से समय में ही दांव-पेच है, राज्य के कामकाज प्रभावित होते हैं, खजाने पर बोझ बढ़ता है, बल्कि आम नागरिकों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर से भरोसा भी कमजोर होता है। इससे पहले वहां भाजपा और पीडीपी गठबंधन की सरकार थी, वह अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाई। बीच में ही संबंध विच्छेद हो गया, तो यह उन दोनों पार्टियों के बीच मतभेद की वजह से हुआ। फिर करीब छह महीने तक विधानसभा को निलंबित रखा गया। जब वहां नए राज्यपाल नियुक्त हुए, तो उम्मीद बनी थी कि लोकतंत्र की बहाली का रास्ता खुलेगा, पर उनकी तरफ से ऐसी कोई पहल नहीं दिखी। जब राजनीतिक दलों ने अपनी तरफ से पहल की, तो उन्होंने नए सिरे से चुनाव का फैसला सुना दिया!

'गलत' वक्त पर गवर्नर का अलोकतांत्रिक फैसला!

(नवभारत टाइम्स)

पाकिस्तान से सटा सीमावर्ती राज्य जम्मू कश्मीर का विवादों में घिरा रहना कोई नई बात नहीं है। इस राज्य में उठने वाले तमाम विवादों पर देश भर में सियासत भी खूब होती है। अब चर्चा मौजूदा गवर्नर सत्यपाल मलिक के फैसले पर छिड़ी हुई है। दरअसल, राज्यपाल ने पिछले दिनों राज्य विधानसभा को भंग कर दिया था। विधानसभा भंग करने पर कोई सवाल नहीं है, क्योंकि यह उनके अधिकार क्षेत्र में है। हां, गंभीर सवाल इस मुद्दे पर जरूर उठ रहा है कि आखिर गवर्नर ने विधानसभा भंग करने का फैसला उस दिन ही क्यों लिया जिस दिन सरकार बनाने के लिए पीडीपी द्वारा उन्हें को खत लिखा गया था। विधानसभा भंग ही करना था तो यह फैसला बहुत पहले हो गया होता अथवा सरकार बनने के बाद सदन में बहुमत सिद्ध न होने पर भी यह काम हो सकता था। यूं कहें कि राज्यपाल ने गलत समय पर 'अलोकतांत्रिक' फैसला लिया। अब यदि यह कहा जाए कि राज्यपाल ने लोकतांत्रिक मर्यादाओं का ख्याल नहीं रखा तो भी कुछ गलत नहीं होगा। इस बाबत विधि विशेषज्ञों की भी राय है कि राज्यपाल को पीडीपी के नेतृत्व वाले गठबंधन को सदन में अपना बहुमत साबित करने का एक अवसर प्रदान करना चाहिये था। राज्य के पूर्व महाधिवक्ता मोहम्मद इशाक कादरी ने कहा कि सरकार बनाने के दावे को देखते हुये विधानसभा भंग करने में संविधान की भावना और सुप्रीम कोर्ट के दिशानिर्देशों का अनुपालन नहीं हुआ। सरकार बनाने के पत्र में किए दावे के समर्थन में राज्यपाल को संतुष्ट होना चाहिये था। कादरी ने कहा कि बीते 5 माह से विधानसभा निलंबित रखी गयी। इसका उद्देश्य राज्य में नई सरकार के गठन को अवसर देना था। अब राज्यपाल के फैसले के बाद ये आरोप लगने लगे हैं कि उन्होंने भाजपा की राजनीति के अंतर्गत इस तरह के फैसले लिए। हालांकि गृहमंत्री ने इसका खंडन किया है।

जम्मू कश्मीर विधानसभा भंग होने के बाद गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने एक अंग्रेजी अखबार को दिए इंटरव्यू में कहा कि इस पूरे प्रकरण में भाजपा की कोई भूमिका नहीं है। राज्यपाल ने वहां के राजनीतिक हालात को देखते हुए फैसला लिया। वो जानते थे कि राज्य में नई सरकार बनाना अभी संभव नहीं है। इस मसले में भाजपा को खींचने की कोशिश को उन्होंने दुर्भाग्यपूर्ण बताया। आपको बता दें कि जम्मू कश्मीर में 19 दिसम्बर को राज्यपाल शासन की अवधि समाप्त हो रही है। उसके बाद राष्ट्रपति शासन लागू होना लगभग तय है। समझा जा रहा है कि लोकसभा चुनाव के साथ राज्य विधानसभा के चुनाव भी कराए जा सकते हैं। इससे पहले महबूबा मुफ्ती के नेतृत्व में महागठबंधन और सज्जाद लोन के नेतृत्व में भाजपा द्वारा सरकार बनाने की कोशिशें तेज हुई थीं। विधानसभा भंग करने का आदेश जारी करने के बाद राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने कहा कि मैं कानून के तहत प्राप्त अधिकारों का इस्तेमाल करते हुए जम्मू-कश्मीर की विधानसभा को भंग करता हूँ। मैंने कोई पक्षपात नहीं किया है। जो जनता के हक में था, मैंने वही फैसला लिया। उन्होंने कहा कि पीडीपी, नेशनल

की राजनीति की वजह से कई बार लोकतंत्र को कुचला गया। खासकर कश्मीर जैसे विशिष्ट स्थिति वाले राज्य में घोर लापरवाही बरती गई। जनतांत्रिकता के जरिए भारतीयता से जुड़ाव नहीं करवाया गया। कांग्रेस या दिल्ली की राजनीति से अलगाव लोकतंत्र की पहचान के खिलाफ खड़ा हो गया। जो पहचान खुद को भारतीयता के साथ देख सकती थी वह कांग्रेस और दिल्ली के खिलाफ व 'भारत' के खिलाफ दिखाई जाने लगी।

राज्यपाल साहब ने जिस सियासी पाकीजगी की बात की है हम उनके साथ हैं। उम्मीद है कि वे सीटों और दलों के दांव-पेच के उलट कश्मीर के दल और वहां की जनता को जनतांत्रिकता से जोड़ पाएं। उन्हें उन कारणों पर भी गौर करना होगा जिसकी वजह से कश्मीर के स्थानीय दल हाल में हुए निकाय चुनावों के खिलाफ खड़े हो गए थे। हर कीमत में वहां लोकतंत्र को बचाना चाहिए। आज के दौर में कश्मीर वैसी जगह नहीं है जहां प्रयोगधर्मिता दिखाई जाए। राज्यपाल का दावा है कि उन्होंने जो किया संविधानसम्मत किया और हमारी यही मांग है कि जितनी फौरी कार्रवाई राजनीतिक शुद्धता और नैतिकता को बचाने में दिखाई गई उतनी ही तेजी से वहां लोकतंत्र की बहाली भी की जाए। कश्मीर की जनता को भी भारत के अन्य भूगोल की तरह लोकतांत्रिक राजनीति का हक है। कश्मीर को भारतीयता से जोड़ने के लिए जल्द से जल्द यह हक दिया जाए, नहीं तो वाया दिल्ली उनके लिए 'भारत' ही भ्रम बन जाता है। वहां लोकशाही का मुंतजिर-ए-वादा है, जो जल्द से जल्द पूरा हो।

जम्मू-कश्मीर में दोहराई गई पुरानी कहानी (नवभारत टाइम्स)

जम्मू-कश्मीर में एक बार फिर वही कहानी दोहरा दी गई, जो बार-बार वहां दोहराई जाती रही है। यह कहानी आठ अगस्त, 1953 को शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी से शुरू हुई थी। इस बार भी वही हुआ। निर्वाचित विधायकों की सरकार बनने के पहले ही विधानसभा भंग कर दी गई। इस बार का घटनाक्रम दिलचस्प है। राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने कार्यभार संभालते ही भरोसा दिया था कि वह विधानसभा को भंग नहीं करेंगे और लोकप्रिय सरकार का रास्ता तलाशेंगे। यह तो सामने नहीं आया कि उन्होंने किस तरह की कोशिश की, लेकिन जो सामने आया वह घाटी के लोगों का विश्वास जीतने में कोई मदद नहीं करेगा।

बहुमत की परख

बीजेपी ने सरकार बनाने के लिए पीपल्स कॉन्फ्रेंस के नेता सज्जाद लोन को आगे किया। दो विधायकों की पार्टी विधायकों को तोड़ने में लग गई। लोन बीजेपी के 25 विधायकों के साथ सरकार बनाने का दावा कर रहे थे। उन्हें बहुमत के लिए 44 का आंकड़ा पार करना था। इसके लिए दूसरी पार्टियों से 17 विधायकों की जरूरत थी। जाहिर है, अपनी पार्टी को टूटने से बचाने के लिए महबूबा ने नेशनल कॉन्फ्रेंस और कांग्रेस से समर्थन हासिल कर लिया। उनके 29 विधायकों के साथ नेशनल कॉन्फ्रेंस के 15 और कांग्रेस के 12 विधायकों के आ जाने से 56 विधायकों का समर्थन प्रस्तावित सरकार को हो जाता। इन पार्टियों को साथ आता देख कर बीजेपी की प्रतिक्रिया इतनी नकारात्मक होगी, इसका जरा भी अंदाजा नहीं था। केंद्र सरकार ने इस तरह का व्यवहार किया जिसमें गंभीरता का पूरा अभाव था। राज्यपाल ने सरकार बनाने के दावे के लिए भेजा गया महबूबा का पत्र नहीं मिलने का जो कारण बताया, उसे मानने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। मलिक ने कहा कि छुट्टी की वजह से राजभवन की फैक्स मशीन बंद थी। कश्मीर जैसे समस्याग्रस्त राज्य के राज्यपाल का यह कहना कि उनके कर्मचारी छुट्टी पर थे, इसलिए वह सूचना नहीं प्राप्त हो सकी, शासन चलाने के तरीके पर बड़ा सवालिया निशान लगाता है। मामले को किस हल्केपन से लिया गया, इसका अंदाजा मलिक और बीजेपी के महासचिव राम माधव के बयानों से मिलता है। मलिक ने कहा कि विधायकों की खरीद-फरोख्त हो रही थी और सरकार बनाने के लिए कॉन्फ्रेंस और कांग्रेस एक 'अपवित्र गठबंधन' बनाने की कोशिश कर रहे थे। अब सवाल यह उठ रहा है कि गठबंधन पवित्र बनता या अपवित्र, समय से पहले इस पर टिप्पणी करने वाले राज्यपाल होते कौन हैं? उन्होंने यह आकलन पहले ही कैसे कर लिया कि संभावित गठबंधन अपवित्र होता। असल सवाल यही है। इसी के मद्देनजर यह कहा जा रहा है कि राज्यपाल की मंशा ठीक नहीं थी। उन्होंने भाजपा के हित में फैसला लिया।

आपको बता दें कि 21 नवंबर को राज्यपाल सत्यपाल मलिक को लिखी गई चिट्ठी में महबूबा मुफ्ती ने दावा किया था कि उनके पास नेशनल कॉन्फ्रेंस के 15 और कांग्रेस के 12 विधायकों का समर्थन है। 87 सदस्यीय विधानसभा में मुफ्ती की पार्टी से 29 विधायक हैं। महबूबा मुफ्ती ने राजभवन की फैक्स मशीन का मजाक बनाते हुए ट्वीट किया था कि कोई पत्र राजभवन नहीं पहुंच रहा है और लोग जवाब के इंतजार में हैं। नेशनल कांफ्रेंस के नेता उमर अब्दुल्ला ने महबूबा के ट्वीट्स को रीट्वीट किया। दोनों ने इस स्थिति का मजाक बनाया कि राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने उनके पत्रों को रिसीव करने और उनका जवाब देने की जगह विधानसभा को ही भंग कर दिया। इसी क्रम में पीडीपी की पूर्व सहयोगी पार्टी भाजपा के राष्ट्रीय महासचिव राम माधव ने उमर अब्दुल्ला और महबूबा मुफ्ती को लेकर एक विवादित बयान में कहा कि उक्त दलों ने ने सीमा पार से मिल रहे निर्देशों के अनुसार ही पिछले महीने हुए स्थानीय निकाय चुनावों का बहिष्कार किया था। लेकिन उन्हें सीमा पार से मिले ताजा निर्देशों में शायद कहा गया है कि कि दोनों साथ आएं और सरकार बना लें। हालांकि महबूबा मुफ्ती और उमर अब्दुल्ला से चुनौती मिलने के बाद राम माधव ने अपने शब्द वापस ले लिए। उन्होंने ट्वीट किया कि उमर अब्दुल्ला, मैं आपकी देशभक्ति पर सवाल नहीं उठा रहा था। लेकिन पीडीपी और नेशनल कॉन्फ्रेंस में अचानक प्रेम देखकर और सरकार बनाने की हड़बड़ी देखकर मन में कई सवाल उठे, शक हुआ। वो मेरी राजनीतिक टिप्पणी थी। मैं आपकी तौहीन नहीं करना चाहता था। एक अन्य ट्वीट में राम माधव ने लिखा कि जब आपने ये कह ही दिया कि आपके ऊपर कोई बाहरी दबाव नहीं था तो ये साबित हो गया कि पीडीपी और नेशनल कॉन्फ्रेंस के बीच प्रेम सच्चा है। लेकिन आप सरकार नहीं बना पाए। अब दोनों पार्टियों को चुनाव में उतरना चाहिए।

सबके बावजूद यह सवाल उठने लगे हैं कि जब भाजपा और पीडीपी का गठबंधन टूटा तभी विधानसभा भंग करने का एलान क्यों नहीं किया गया। इतने दिन तक क्या इसलिए उसे निलंबित रखा गया कि भाजपा को अपनी सरकार बनाने के समीकरण बिठाने का समय मिल जाए? और जब इस मामले में उसे कामयाबी नहीं मिली, तो उसे अचानक भंग करने का फैसला सुना दिया गया! हालांकि राज्यपाल को यह अधिकार है कि वे स्थितियों के मद्देनजर अपने विवेक से विधानसभा को भंग कर सकते हैं। इसलिए अगर विपक्षी दल उनके फैसले को अदालत में चुनौती देना चाहते हैं, तो उसमें उन्हें कितनी कामयाबी मिलेगी, कहना मुश्किल है। पर यह सवाल तो अपनी जगह बना ही रहेगा कि जब विपक्षी दलों ने मिल कर नई सरकार गठित करने की पहल की और पीडीपी की तरफ से बहुमत संबंधी पत्र राज्यपाल को भेजा गया, तभी वे क्यों सक्रिय हुए और उन्हें लगा कि राज्य में सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है। फिर आनन-फानन उन्होंने विधानसभा भंग करने का फैसला सुना दिया। अगर उन्हें सरकार गठन का प्रस्ताव मिला, तो उस पर उन्होंने कोई विचार करना, संबंधित नेताओं से बातचीत करना जरूरी क्यों नहीं समझा। जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा संबंधी चुनौतियों से इनकार नहीं किया जा सकता। मगर इतने समय तक जब विधानसभा निलंबित थी, तब यह चुनौती बड़ी क्यों नहीं लगी। नई सरकार के गठन का प्रस्ताव मिलते ही यह चुनौती इतनी विकट क्यों हो गई? राज्यपाल के इस फैसले पर जम्मू-कश्मीर भाजपा का यह कहना कि नई सरकार के गठन की पहल चरमपंथियों के इशारे पर हुई थी, गले नहीं उतरता। यह चुने हुए प्रतिनिधियों के समर्थन से चुने हुए प्रतिनिधियों

एक-दूसरे के विरोधी विचार रखने वाली पार्टियां साथ आ रही थीं। दोनों बातों को कानूनी विशेषज्ञ गलत बता रहे हैं। उनका कहना है कि कर्नाटक के मुख्यमंत्री एसआर बोम्मई मामले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि बहुमत के दावे की परख सिर्फ विधानसभा में हो सकती है। इसी आधार पर अरुणाचल प्रदेश और उत्तराखंड में बीजेपी के राज्यपालों के फैसले अदालत में टिक नहीं पाए। विरोधी विचारों वाली पार्टियों के साथ आने के कई उदाहरण कश्मीर में ही मौजूद हैं। पीडीपी ने बीजेपी की कट्टर विरोधी होने के बावजूद उसके साथ सरकार बनाई। नेशनल कॉन्फ्रेंस एनडीए में रह चुकी है और उमर अब्दुल्ला वाजपेयी की सरकार में राज्य मंत्री थे। बिहार में मोदी का विरोध कर पिछला चुनाव जीतने वाले नीतीश कुमार ने पाला बदल कर बीजेपी के साथ सरकार बनाई। राम माधव ने आरोप लगा दिया कि पाकिस्तान के इशारे पर पार्टियां साथ आ रही थीं। हालांकि उन्होंने अपना बयान वापस ले लिया, लेकिन यह घाटी की राजनीति में एक खट्टापन छोड़ गया।

इस बार भी यही साबित हुआ कि कोई भी सरकार केंद्र की मर्जी के बगैर नहीं बन सकती। यह सिलसिला 1953 में शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर उनके उप मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद को मुख्यमंत्री बनाने से शुरू हुआ। लेकिन ऐसे कदमों से राज्य की समस्या सुलझाने में मदद नहीं मिलती। बख्शी गुलाम मोहम्मद और उनके बाद आए जीएम सादिक को सत्ता देने के बाद भी बात नहीं बनी। अंत में, शेख अब्दुल्ला को रिहा करना पड़ा और उनसे समझौता करना पड़ा। स्वायत्तता को लेकर जनता का दबाव ऐसा था कि केंद्र की मदद से सत्ता में आए बख्शी और सादिक को भी इसके लिए केंद्र से लड़ना पड़ा। जनता के दबाव का ही असर है कि बीजेपी के साथ सरकार बनाने का सपना देखने के बावजूद लोन को यह कहना पड़ा कि धारा 35-ए और धारा 370 के साथ किसी तरह की छेड़छाड़ नहीं हो सकती। बीजेपी दोनों ही धाराओं के खिलाफ है। धारा 35-ए बाहरी लोगों को जम्मू-कश्मीर में बसने की इजाजत नहीं देती और धारा 370 राज्य को विशेष दर्जा देती है। धारा 35-ए का मामला सुप्रीम कोर्ट में लंबित है और इसके बचाव का मुद्दा अभी राज्य में गरमाया हुआ है। ऐसा नहीं है कि नेशनल कॉन्फ्रेंस और कांग्रेस के समर्थन से बनी सरकार सभी समस्याएं हल कर लेती। लेकिन इससे कौन इनकार कर सकता है कि समस्या के समाधान का रास्ता राजनीतिक गतिविधियों की बहाली से ही निकलेगा?

की सरकार बनाने का प्रस्ताव था, उसमें किसी की साजिश देखते हुए उसे खारिज कर देना लोकतांत्रिक प्रक्रिया नहीं कही जा सकती। इस तरह न सिर्फ प्रशासन की नाहक कवायद बढ़ती है, राज्य के कामकाज प्रभावित होते हैं, खजाने पर बोझ बढ़ता है, बल्कि आम नागरिकों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर से भरोसा भी कमजोर होता है। इससे पहले वहां भाजपा और पीडीपी गठबंधन की सरकार थी, वह अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाई। बीच में ही संबंध विच्छेद हो गया, तो यह उन दोनों पार्टियों के बीच मतभेद की वजह से हुआ। फिर करीब छह महीने तक विधानसभा को निलंबित रखा गया। जब वहां नए राज्यपाल नियुक्त हुए, तो उम्मीद बनी थी कि लोकतंत्र की बहाली का रास्ता खुलेगा, पर उनकी तरफ से ऐसी कोई पहल नहीं दिखी। यूं कहें कि राज्यपाल ने विधानसभा भंग करने का फैसला सुनाकर अच्छा नहीं किया। उन्हें राज्य में एक लोकतांत्रिक सरकार के गठन का मौका देना चाहिए था। बहरहाल, देखना यह है कि विधानसभा भंग किए जाने का मसला कहां जाकर ठहरता है।

बढ़ती हुई चुनौती

लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अभाव आतंकवाद को मदद पहुंचाता है। अगर बीजेपी का मौजूदा नेतृत्व अटल बिहारी वाजपेयी की तरह उदार रवैया अपनाता तो बात बन सकती थी। लेकिन इसके आसार नजर नहीं आते। पार्टी के स्थानीय नेता जम्मू और कश्मीर घाटी के बीच खाई बढ़ाने में लगे हैं। केंद्र की नीति भी घाटी के राजनीतिक नेतृत्व के वजूद को नकारने की है। महबूबा से रिश्ता तोड़ कर उसने वही जताया और विधानसभा को भंग कर भी उसने यही संदेश दिया। आने वाले 19 दिसंबर को राज्यपाल के शासन की मियाद खत्म हो जाएगी और राष्ट्रपति शासन लग जाएगा। विधानसभा के चुनाव राष्ट्रपति शासन के दौरान होंगे। इससे अलगाववादी हुर्रियत के लिए इसके बायकाट की अपील करना और आसान हो जाएगा। कश्मीर में अमन का मसला राज्य की स्वायत्तता, पाकिस्तान के साथ सुधरे संबंध और देश में सांप्रदायिक सौहार्द की शर्तों से बंधा है। बीजेपी के विचार इन तीनों शर्तों के प्रतिकूल हैं।

जम्मू-कश्मीर विधानसभा भंग होने से मौकापरस्ती पार्टियों को जोर का झटका धीरे से लगा (दैनिक जागरण)

जम्मू-कश्मीर विधानसभा भंग करने के राज्यपाल के फैसले के साथ वहां जोड़-तोड़ की सरकार बनने की संभावना खत्म जरूर हो गई, लेकिन यह भी तय है कि इस फैसले को चुनौती दी जाएगी। कहना कठिन है कि न्यायपालिका के समक्ष ऐसी दलीलें कितना टिक पाएंगी कि सरकार बनने की कोई सूरत नजर न आने के कारण विधानसभा भंग करने के अलावा और कोई उपाय नहीं रह गया था, क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि एक-दूसरे की धुर विरोधी पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी एवं नेशनल कांफ्रेंस के साथ कांग्रेस का गठजोड़ तेजी के साथ आकार ले रहा था। ये तीनों दल मिलकर सरकार गठन का दावा पेश करने की तैयारी में इसीलिए जुटे थे, क्योंकि सज्जाद लोन के नेतृत्व में भाजपा के समर्थन वाली सरकार बनने की सुगबुगाहट भी तेज हो गई थी।

राज्यपाल के फैसले के बाद फिलहाल किसी भी गठजोड़ की सरकार नहीं बनने जा रही। अब वहां नए सिरे से चुनाव होना या किसी गठजोड़ की सरकार बनना इस पर निर्भर करेगा कि विधानसभा भंग करने के फैसले को चुनौती देने की स्थिति में अदालत क्या फैसला करती है? भविष्य में जो भी हो, इसमें दो राय नहीं कि पीडीपी और नेशनल कांफ्रेंस का एक साथ आना हैरान करने वाला घटनाक्रम रहा। इन दोनों दलों के नेता भले ही अपनी एकजुटता को लेकर सपा-बसपा के संभावित मेल को एक उदाहरण की तरह पेश कर रहे हों, लेकिन यह काफी कुछ वैसा ही था जैसे कल को तमिलनाडु में द्रमुक और अन्नाद्रमुक एक हो जाएं, क्योंकि पीडीपी तो नेशनल कांफ्रेंस से ही निकली पार्टी है। आम तौर पर जब ऐसी अवसरवादिता देखने को मिलती है तो उसे इस जुमले से ढकने की कोशिश की जाती है कि राजनीति में न तो कोई स्थायी मित्र होता है और न ही शत्रु, लेकिन इससे मौकापरस्ती छिपती नहीं।

पीडीपी, नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस के नेता कितना ही यह कहें कि वे कश्मीर के हित के लिए दलगत हितों से परे हटकर एक साथ आने को तैयार थे, लेकिन सच यही है कि इस एका का मकसद जनता को बरगलाकर अपना उल्लू सीधा करना था। यह भी साफ है कि इस एका का मूल कारण जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा देने वाले अनुच्छेद 35-ए के पक्ष में मोर्चेबंदी करना था। इसे संभावित गठजोड़ के भावी मुख्यमंत्री माने जा रहे अल्ताफ बुखारी ने खुद यह कहकर साबित किया कि उनका एका केवल 35-ए के संरक्षण के लिए हो रहा है। यह अनुच्छेद राज्य के स्थायी नागरिकों को परिभाषित करने के साथ उनके अधिकार भी तय करता है। इसके कारण ही धारा 370 अस्थायी होते हुए भी स्थायी रूप में कायम है।

GS World Committed To Excellence

यह हैरानी के साथ चिंता की भी बात है कि कश्मीर में अलगाव की मानसिकता को बल देने वाले अनुच्छेद 35-ए पर सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई का जैसा विरोध घाटी के अलगाववादी कर रहे वैसा ही पीडीपी और नेशनल कांफ्रेंस भी कर रही है। इसी विरोध को दर्शाने के लिए इन दोनों दलों ने निकाय चुनावों का बहिष्कार किया। 35-ए पर अलगाववादियों और पीडीपी एवं नेशनल कांफ्रेंस के सुर एक होना यही बताता है कि यह अनुच्छेद किस तरह कश्मीर समस्या की जड़ बना हुआ है।

GS World टीम...

सारांश

- भारत विभाजन के साथ ही अपने भौगोलिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक कारकों व सामरिक महत्त्व के कारण कश्मीर की स्थिति विशिष्ट हो गई। अपनी इसी विशिष्टता के कारण कश्मीर और वहां की जनता को भारतीयता और जनतांत्रिकता के साथ जोड़ने के लिए एक संवेदनशील राजनीति की जरूरत थी।
- शेख अब्दुल्ला की सरकार को भंग करने से लेकर आज के दौर में विधानसभा भंग करने के फैसले तक में हम देखते हैं कि येन-केन-प्रकारेण सत्ता हासिल करने की कवायद वहां लोकतंत्र को मजबूत होने नहीं दे रही। कांग्रेस और भाजपा की महत्त्वाकांक्षी राजनीति का जो असर आम कश्मीरियों को भुगतना पड़ रहा है
- पीडीपी नेता महबूबा मुफ्ती सईद के बाद पीपुल्स कांफ्रेंस के नेता सज्जाद लोन ने भी भाजपा के समर्थन से सरकार बनाने का दावा पेश कर दिया तो जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल ने विधानसभा ही भंग कर दी।
- विधानसभा भंग करने का कारण बताते हुए सत्यपाल मलिक कहते हैं, 'ये वे बल हैं जो जमीनी लोकतंत्र बिल्कुल नहीं चाहते थे और अचानक यह देखकर कि उनके हाथ से चीजें निकल रही हैं एक अपवित्र गठबंधन करके मेरे सामने आ गए। मैंने किसी के साथ पक्षपात नहीं किया। मैंने जो जम्मू-कश्मीर की जनता के पक्ष में था वह काम किया'।
- राज्यपाल ने जो फैसला किया और राज्य के मामलों से जुड़े नेता ने जो इस पूरी कवायद को पाकिस्तान से जोड़ दिया वह नया नहीं है। यह मामला अगर कर्नाटक का होता, बिहार का होता और मध्य प्रदेश का होता तो अन्य राजनीतिक विडंबनाओं की तरह इसे भी देख कर आगे की कार्रवाई पर नजर रखी जाती।
- सामरिक दृष्टि से अहम इस इलाके की त्रासदी रही है कि इसे विशिष्ट बना कर रखा गया है, और भारत का लोकतंत्र वहां अभी भी एक भ्रम है। आज जब केंद्र में राजग की सरकार है और उसके द्वारा नियुक्त राज्यपाल ने जो वहां किया वह नया भी नहीं है। आजादी के बाद भारत की लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई कांग्रेस सरकार ने भी वहां यही किया था।
- आज नेशनल कांफ्रेंस ने अपना नाम पाकिस्तान से जोड़ने पर गहरी नाराजगी जताई और इसके सबूत मांगे। इसी नेशनल कांफ्रेंस का इतिहास कश्मीर में शेख अब्दुल्ला के साथ शुरू होता है। कश्मीर में किसान आंदोलन जैसी प्रगतिशील मुहिम शुरू करने वाले शेख अब्दुल्ला दिल्ली दरबार के द्वारा खलनायक बना दिए जाते हैं। शेख अब्दुल्ला की सरकार को भंग करने के साथ ही दिल्ली ने कश्मीर को विशिष्ट बनाने की जो नींव डाली आज उसपर अलगाववाद का भव्य किला बन गया है।
- भारत से पाकिस्तान विभाजन और अपने भौगोलिक कारण से कश्मीर नए आजाद भारत का नाजुक अंग बन चुका था। लेकिन इस नाजुक अंग की ठीक से देखभाल कर लोकतांत्रिक रूप से मजबूत बना अपने पैरों पर खड़ा करने के बजाए दिल्ली दरबार ने घुसपैठ की राजनीति का रास्ता चुना। इस घुसपैठ की अवसरवादी राजनीति का बुरा असर हुआ कि कश्मीर भौगोलिक रूप से दिल्ली से जितना दूर था उस दूरी को 'भारत' की दूरी बना दी गई।
- आजादी के बाद से कांग्रेस या दिल्ली दरबार के इसी दांव-पेच को 'भारत' करार देकर कश्मीरियों का लोकतंत्र से अलगाव हुआ। राजनीति एक राजनीतिक दल कांग्रेस की थी और नुकसान एक भूगोल, एक संस्कृति, एक समाज और एक अर्थशास्त्र जिसे सामूहिक रूप से भारत कहते हैं उसका हो रहा था।
- आजादी के बाद से अब तक के छोटे से समय में ही दांव-पेच की राजनीति की वजह से कई बार लोकतंत्र को कुचला गया। खासकर कश्मीर जैसे विशिष्ट स्थिति वाले राज्य में घोर लापरवाही बरती गई। जनतांत्रिकता के जरिए भारतीयता से जुड़ाव नहीं करवाया गया। कांग्रेस या दिल्ली की राजनीति से अलगाव लोकतंत्र की पहचान के खिलाफ खड़ा हो गया।
- आज के दौर में कश्मीर वैसी जगह नहीं है जहां प्रयोगधर्मिता दिखाई जाए। राज्यपाल का दावा है कि उन्होंने जो किया संविधानसम्मत किया और हमारी यही मांग है कि जितनी फौरी कार्रवाई राजनीतिक शुद्धता और नैतिकता को बचाने में दिखाई गई उतनी ही तेजी से वहां लोकतंत्र की बहाली भी की जाए। कश्मीर की जनता को भी भारत के अन्य भूगोल की तरह लोकतांत्रिक राजनीति का हक है। कश्मीर को भारतीयता से जोड़ने के लिए जल्द से जल्द यह हक दिया जाए, नहीं तो वाया दिल्ली उनके लिए 'भारत' ही भ्रम बन जाता है।
- बुधवार को जम्मू-कश्मीर में बहुत तेजी से घटनाक्रम बदला और पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, नेशनल कान्फ्रेंस और कांग्रेस पार्टी ने साथ मिल कर सरकार बनाने का फैसला किया। इस आशय का पत्र भी राज्यपाल को भेज दिया गया। सोशल मीडिया पर इसका प्रचार होने लगा। तभी रात में राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने अचानक विधानसभा भंग कर दी। तर्क दिया गया कि राज्य में सुरक्षा और लोकतंत्र बहाली के लिए यह कदम जरूरी था।
- जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा संबंधी चुनौतियों से इनकार नहीं किया जा सकता। मगर इतने समय तक जब विधानसभा निलंबित थी, तब यह चुनौती बड़ी क्यों नहीं लगी। नई सरकार के गठन का प्रस्ताव मिलते ही यह चुनौती इतनी विकट क्यों हो गई?
- राज्यपाल के इस फैसले पर जम्मू-कश्मीर भाजपा का यह कहना कि नई सरकार के गठन की पहल चरमपंथियों के इशारे पर हुई थी, गले नहीं उतरता। यह चुने हुए प्रतिनिधियों के समर्थन से चुने हुए प्रतिनिधियों की सरकार बनाने का प्रस्ताव था, उसमें किसी की साजिश देखते हुए उसे खारिज कर देना लोकतांत्रिक प्रक्रिया नहीं कही जा सकती।
- जम्मू-कश्मीर में एक बार फिर वही कहानी दोहरा दी गई, जो बार-बार वहां दोहराई जाती रही है। यह कहानी आठ अगस्त, 1953 को शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी से शुरू हुई थी। इस बार भी वही

हुआ। निर्वाचित विधायकों की सरकार बनने के पहले ही विधानसभा भंग कर दी गई।

- राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने कार्यभार संभालते ही भरोसा दिया था कि वह विधानसभा को भंग नहीं करेंगे और लोकप्रिय सरकार का रास्ता तलाशेंगे। यह तो सामने नहीं आया कि उन्होंने किस तरह की कोशिश की, लेकिन जो सामने आया वह घाटी के लोगों का विश्वास जीतने में कोई मदद नहीं करेगा।
- राज्यपाल ने सरकार बनाने के दावे के लिए भेजा गया महबूबा का पत्र नहीं मिलने का जो कारण बताया, उसे मानने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। मलिक ने कहा कि छुट्टी की वजह से राजभवन की फैक्स मशीन बंद थी। कश्मीर जैसे समस्याग्रस्त राज्य के राज्यपाल का यह कहना कि उनके कर्मचारी छुट्टी पर थे, इसलिए वह सूचना नहीं प्राप्त हो सकी, शासन चलाने के तरीके पर बड़ा सवालिया निशान लगाता है।
- कर्नाटक के मुख्यमंत्री एसआर बोम्मई मामले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि बहुमत के दावे की परख सिर्फ विधानसभा में हो सकती है। इसी आधार पर अरुणाचल प्रदेश और उत्तराखंड में बीजेपी के राज्यपालों के फैसले अदालत में टिक नहीं पाए। विरोधी विचारों वाली पार्टियों के साथ आने के कई उदाहरण कश्मीर में ही मौजूद हैं। पीडीपी ने बीजेपी की कट्टर विरोधी होने के बावजूद उसके साथ सरकार बनाई। नेशनल कॉन्फ्रेंस एनडीए में रह चुकी है और उमर अब्दुल्ला वाजपेयी की सरकार में राज्य मंत्री थे।
- जम्मू कश्मीर में 19 दिसम्बर को राज्यपाल शासन की अवधि समाप्त हो रही है। उसके बाद राष्ट्रपति शासन लागू होना लगभग तय है। समझा जा रहा है कि लोकसभा चुनाव के साथ राज्य विधानसभा के चुनाव भी कराए जा सकते हैं। इससे पहले महबूबा मुफ्ती के नेतृत्व में महागठबंधन और सज्जाद लोन के नेतृत्व में भाजपा द्वारा सरकार बनाने की कोशिशें तेज हुई थीं।
- 21 नवंबर को राज्यपाल सत्यपाल मलिक को लिखी गई चिट्ठी में महबूबा मुफ्ती ने दावा किया था कि उनके पास नेशनल कॉन्फ्रेंस के 15 और कांग्रेस के 12 विधायकों का समर्थन है। 87 सदस्यीय विधानसभा में मुफ्ती की पार्टी से 29 विधायक हैं।

जम्मू और कश्मीर

- जम्मू और कश्मीर भारत के सबसे उत्तर में स्थित राज्य है। पाकिस्तान इसके उत्तरी इलाके (ष्पाक अधिकृत कश्मीरष्) या तथाकथित ष्आजाद कश्मीरष् के हिस्सों पर काबिज है, जबकि चीन ने अक्साई चिन पर कब्जा किया हुआ है। भारत इन कब्जों को अवैध मानता है जबकि पाकिस्तान भारतीय जम्मू और कश्मीर को एक विवादित क्षेत्र मानता है।
- राज्य की आधिकारिक भाषा उर्दू है। जम्मू नगर जम्मू प्रांत का सबसे बड़ा नगर तथा जम्मू-कश्मीर राज्य की जाड़े की राजधानी है। वहीं कश्मीर में स्थित श्रीनगर गर्मी के मौसम में राज्य की राजधानी रहती है। जम्मू और कश्मीर में जम्मू (पूंछ सहित), कश्मीर, लद्दाख, बल्तिस्तान एवं गिलगित के क्षेत्र सम्मिलित हैं।
- जम्मू और कश्मीर की लोकतान्त्रिक और निर्वाचित संविधान-सभा ने 1957 में एकमत से श्महाराजा द्वारा कश्मीर के भारत में विलय के निर्णयश को स्वीकृति दे दी और राज्य का ऐसा संविधान स्वीकार किया जिसमें कश्मीर के भारत में स्थायी विलय को मान्यता दी गयी थी।
- यहाँ के निवासियों अधिकांश मुसलमान हैं, किंतु उनकी रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं संस्कृति पर हिंदू धर्म की पर्याप्त छाप है। कश्मीर के सीमांत क्षेत्र पाकिस्तान, अफगानिस्तान, सिंक्यांग तथा तिब्बत से मिले हुए हैं। कश्मीर भारत का महत्वपूर्ण राज्य है।
- राज्य को संविधान के अनुच्छेद 370 के तहत स्वायत्तता प्राप्त है। भारत के संवैधानिक प्रावधान स्वत: जम्मू तथा कश्मीर पर लागू नहीं होते। केवल वही प्रावधान जिनमें स्पष्ट रूप से कहा जाए कि वे जम्मू कश्मीर पर लागू होंगे, उस पर लागू होते हैं।
- धारा 370 के प्रावधानों के अनुसार, संसद को जम्मू-कश्मीर के बारे में रक्षा, विदेश मामले और संचार के विषय में कानून बनाने का अधिकार है लेकिन किसी अन्य विषय से सम्बन्धित कानून को लागू करवाने के लिये केन्द्र को राज्य सरकार का अनुमोदन चाहिये। इसी विशेष दर्जे के कारण जम्मू-कश्मीर राज्य पर संविधान की धारा 356 लागू नहीं होती।
- जम्मू कश्मीर संविधान सभा द्वारा निर्मित राज्य संविधान से वहाँ का कार्य चलता है। यह संविधान जम्मू कश्मीर के लोगों को राज्य की नागरिकता भी देता है। केवल इस राज्य के नागरिक ही संपत्ति खरीद सकते हैं या चुनाव लड़ सकते हैं या सरकारी सेवा ले सकते हैं।
- भारतीय संसद जम्मू कश्मीर से संबंध रखने वाला ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती है जो इसकी राज्य सूची का विषय हो। अवशेष शक्ति जम्मू कश्मीर विधान सभा के पास होती है।
- इस राज्य पर सशस्त्र विद्रोह की दशा में या वित्तीय संकट की दशा में आपात काल लागू नहीं होता है। भारतीय संसद राज्य का नाम क्षेत्र सीमा बिना राज्य विधायिका की स्वीकृति के नहीं बदलेगी।
- राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति राज्य मुख्यमंत्री की सलाह के बाद करेंगे। संसद द्वारा पारित निवारक निरोध नियम राज्य पर अपने आप लागू नहीं होगा। राज्य की पृथक दंड संहिता तथा दंड प्रक्रिया संहिता है।
- भारतीय जम्मू और कश्मीर राज्य के तीन मुख्य अंचल हैं : जम्मू (हिन्दू बहुल), कश्मीर (मुस्लिम बहुल) और लद्दाख (बौद्ध बहुल)। प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी श्रीनगर है और शीतकालीन राजधानी जम्मू-तवी।
- कश्मीर को श्दुनिया का स्वर्गश माना गया है। अधिकांश जिले हिमालय पर्वत से ढके हुए हैं। मुख्य नदियाँ हैं सिन्धु, झेलम और चेनाब। यहाँ कई खूबसूरत झीलें हैं जैसे: डल, वुलर और नगीन।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. जम्मू-कश्मीर विधानसभा के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. जम्मू और कश्मीर विधानसभा का कार्यकाल 5 वर्ष होता है।
   2. जम्मू-कश्मीर का विधानमंडल एक सदनीय है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2
   (उत्तर-d)

2. अभी हाल में जम्मू-कश्मीर विधानसभा क्यों चर्चा में रही?
   (a) जम्मू-कश्मीर विधानसभा में सीटों की संख्या में 18 प्रतिशत वृद्धि की गयी।
   (b) सज्जाद लोन विधानसभा के नये स्पीकर चुने गये।
   (c) राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने विधानसभा को भंग कर दिया।
   (d) चुनाव आयोग के निर्देश पर 4 सीटें उत्तरी कश्मीर के इलाकों के लिए सुरक्षित रखी गयीं।
   (उत्तर-c)

3. जम्मू-कश्मीर विधानसभा चुनाव, 2014 के संदर्भ में क्या सत्य है?
   1. इस चुनाव में नेशनल कांग्रेस 34 सीटों के साथ प्रथम स्थान पर रही।
   2. पीडीपी और कांग्रेस के गठबंधन से चुनाव बाद महबूबा मुफ्ती राज्य की मुख्यमंत्री चुनी गयीं।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2
   (उत्तर-d)

4. जम्मू-कश्मीर विधानसभा के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार करें-
   1. जम्मू-कश्मीर विधानसभा का गठन 1957 में किया गया।
   2. विधानसभा अन्य राज्यों की भाँति भंग नहीं की जा सकती है।

   उपर्युक्त में से कौन सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1 (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों (d) न तो 1, न ही 2
   (उत्तर-a)

5. राज्य विधानसभाओं को भंग या निलंबित करने संबंधी संवैधानिक प्रावधानों एवं इसमें राज्यपाल की शक्तियों की चर्चा कीजिए।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. 104वाँ संविधान संशोधन विधेयक किससे सम्बन्धित था?
   (a) कुछ राज्यों में विधान परिषदों के उत्सादन से
   (b) भारत के बाहर रहने वाले भारतीय मूल के लोगों के लिए दोहरी नागरिकता आरंभ करने से
   (c) निजी शिक्षा संस्थानों में सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए कोटा प्रदान करने से
   (d) केन्द्र सरकार के अधीन नौकरियों पर धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए कोटा प्रदान करने से
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2006, उत्तर-c)

2. किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा के निम्नलिखित में से कौन-से परिणामों का होना आवश्यक नहीं है?
   1. राज्य विधानसभा का विघटन
   2. राज्य की मंत्रिपरिषद् का हटाया जाना
   3. स्थानीय निकायों का विघटन

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) 1 और 2
   (b) 1 और 3
   (c) 2 और 3
   (d) 1, 2 और 3
   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2017, उत्तर-B)

3. भारतीय संविधान का अनुच्छेद-370, जिसके साथ हाशिया नोट "जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी उपबन्ध" लगा हुआ है, किस सीमा तक अस्थायी है? भारतीय राज्य-व्यवस्था के संदर्भ में इस उपबन्ध की भावी संभावनाओं पर चर्चा कीजिए।
   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2016)

GS World Committed To Excellence

भारत-आसियान संबंध

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

सिंगापुर में आयोजित आसियान शिखर सम्मेलन में भारत एक बार फिर मजबूत राष्ट्र के रूप में उभरा। इस सम्मेलन के दौरान आसियान देशों के साथ वाणिज्य-व्यापार संबंधी समझौतों के अलावा उल्लेखनीय उपलब्धि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में शांति और समृद्धि संबंधी प्रयासों को थोड़ा और बल मिलना है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'जनसत्ता' तथा 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

संपादकीयः आसियान का हासिल (जनसत्ता)

हिंद-प्रशांत क्षेत्र के हितों की रक्षा के लिए अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया और भारत का एक अलग संगठन भी बनाने का प्रस्ताव है। ऐसे में सिंगापुर में अमेरिकी उपराष्ट्रपति माइक पेंस और भारतीय प्रधानमंत्री के बीच हिंद-प्रशांत क्षेत्र को लेकर हुई बातचीत से एक बार फिर उम्मीदों को बल मिला है। पिछले महीने जापान यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री ने वहां के प्रधानमंत्री शिंजो आबे के साथ बैठक में भी इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया था।

इस बार सिंगापुर में आयोजित आसियान शिखर सम्मेलन में भारत एक बार फिर मजबूत राष्ट्र के रूप में उभरा। इस सम्मेलन के दौरान आसियान देशों के साथ वाणिज्य-व्यापार संबंधी समझौतों के अलावा उल्लेखनीय उपलब्धि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में शांति और समृद्धि संबंधी प्रयासों को थोड़ा और बल मिलना है। आसियान संगठन में इंडोनेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर, मलेशिया, फिलीपिंस, विएतनाम, म्यांमा, कंबोडिया, ब्रूनेई और लाओस के साथ-साथ भारत, आस्ट्रेलिया, चीन, जापान, न्यूजीलैंड, दक्षिण कोरिया, रूस और अमेरिका शामिल हैं। इस संगठन का मकसद परस्पर मिल कर वाणिज्य, व्यापार और शांति के लिए काम करना है। इसके शिखर सम्मेलन में दूसरे देशों के भी प्रतिनिधि हिस्सा लेते और वाणिज्य-व्यापार संबंधी संभावनाओं की तलाश करते हैं। पर इसके अलावा यह सम्मेलन शांति प्रयासों के लिहाज से भी रणनीति तैयार करता है। इसके ज्यादातर सदस्य देशों का ताल्लुक हिंद-प्रशांत क्षेत्र से है, इसलिए स्वाभाविक ही इस क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं पर चर्चा होती है। यों हिंद-प्रशांत क्षेत्र को मुक्त रखने पर जोर पिछले करीब दस सालों से दिया जा रहा है, पर आसियान शिखर सम्मेलन में पिछले चार सालों से इस पर गंभीरता से विचार-विमर्श होता है। इसके अलावा भी कई मौकों पर इसे लेकर विभिन्न देशों के नेताओं के बीच बातचीत होती रही है।

दरअसल, हिंद-प्रशांत क्षेत्र में हिंद महासागर, प्रशांत महासागर और दक्षिण चीन सागर के हिस्से शामिल हैं। हालांकि चीन पूरे दक्षिण चीन सागर पर अपना अधिकार जताता है। इसी के तहत वह हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपनी सैन्य गतिविधियां लगातार बढ़ाता रहा है। पर मलेशिया, फिलीपिंस, विएतनाम, ताईवान, ब्रूनेई इसका विरोध करते रहे हैं। हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन की बढ़ती सैन्य गतिविधियों की वजह से भारत को भी खतरा है। वैसे भी भू-सीमा पर भारत के साथ चीन का विवाद पुराना है। फिर इधर कुछ सालों से जिस तरह पाकिस्तान के साथ उसकी निकटता बढ़ी है, उससे भारत की चिंता और बढ़ गई है। अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया भी चीन की इन गतिविधियों से चिंतित हैं। चूंकि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, इसलिए ये तीनों देश भारत को इसके लिए बल प्रदान करते रहते हैं। हिंद-प्रशांत क्षेत्र के हितों की रक्षा के लिए

संपादकीयः सहयोग का सिलसिला (जनसत्ता)

सिंगापुर में आयोजित आसियान देशों का इस बार का शिखर सम्मेलन भारत के लिए कई तरह से उत्साहजनक है। प्रधानमंत्री ने फिनटेक फेस्टिवल में बैंकिंग प्रौद्योगिकी प्लेटफार्म एपिक्स का उद्घाटन किया। एपिक्स यानी अप्लिकेशन प्रोग्रामिंग इंटरफेस एक्सचेंज एक ऐसा सॉफ्टवेयर प्रोग्राम है, जिसके जरिए हमारे देश की कंपनियां दुनिया भर के वित्तीय संस्थानों से जुड़ सकेंगी। जाहिर है, इससे अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी। पिछले कुछ सालों में जिस तरह इंटरनेट का विस्तार हुआ है और कारोबार के क्षेत्र में इससे काफी मदद मिलने लगी है, एपेक्स उसे और गति देगा। पिछले एक साल में आसियान देशों के साथ भारत के कारोबार में दस फीसद से अधिक बढ़ोतरी हुई है। भारत के कुल निर्यात का ग्यारह फीसद से अधिक हिस्सा सिर्फ आसियान देशों के साथ हुआ। इस तरह सम्मेलन से कारोबार के क्षेत्र में और बढ़ोतरी की उम्मीद बनी है। आसियान सम्मेलन का सबसे बड़ा मकसद आपस में कारोबार और सुरक्षा संबंधी मसलों पर एकजुट होकर काम करना है। आसियान देशों में भारत एक मजबूत अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है, इसलिए भी इसे खास तवज्जो दी जाती है। इस साल फिनटेक फेस्टिवल में भारत के प्रधानमंत्री को संबोधित करने का मौका देकर एक तरह से भारत की आर्थिक ताकत को रेखांकित किया गया।

इस सम्मेलन की दूसरी बड़ी उपलब्धि प्रधानमंत्री की अमेरिकी उपराष्ट्रपति माइक पेंस से मुलाकात और हिंद-प्रशांत क्षेत्र को खुला रखने तथा सुरक्षा संबंधी मसलों पर बातचीत रही। जून में प्रधानमंत्री और अमेरिकी रक्षामंत्री सिंगापुर में ही मिले थे और उन्होंने बंद कमरे में क्षेत्र में प्रतिरक्षा संबंधी मसलों पर बातचीत की थी। उसी बातचीत का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए अमरिकी उपराष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री से बातचीत की। दरअसल, हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन अपना दबदबा बढ़ाने का प्रयास कर रहा है। इसके लिए वह अपने पड़ोसियों पर दबाव भी बना रहा है। इसलिए भारत और अमेरिका की चिंता स्वाभाविक है। वे दोनों इस पक्ष में हैं कि हिंद-प्रशांत क्षेत्र को खुला और समृद्ध बनाया जाना चाहिए। पिछले दिनों जब प्रधानमंत्री जापान की यात्रा पर गए थे, तब भी दोनों देशों के बीच इसी क्षेत्र को सुरक्षित और समृद्ध बनाने की जरूरत पर बल दिया गया। जापान इस मामले में पूरी तरह सहयोग को तैयार है। अगर अमेरिका भी इसमें हाथ मिला लेता है, तो चीन की मुश्किलें निस्संदेह बढ़ेंगी। इस लिहाज से अमेरिकी उपराष्ट्रपति से प्रधानमंत्री की बातचीत हिंद-प्रशांत क्षेत्र को खुला और समृद्ध बनाने की दिशा में नई उम्मीद जगाती है।

आसियान देशों का आर्थिक रूप से मजबूत होना चीन के लिए बड़ी चुनौती है। अभी तक विश्व बाजार के बड़े हिस्से पर चीन का कब्जा है। आसियान देशों का परस्पर कारोबारी संबंध प्रगाढ़ होने और तकनीक के जरिए एक-दूसरे देश की कंपनियों और वित्तीय संस्थाओं के जुड़ने से

अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया और भारत का एक अलग संगठन भी बनाने का प्रस्ताव है। ऐसे में सिंगापुर में अमेरिकी उपराष्ट्रपति माइक पेंस और भारतीय प्रधानमंत्री के बीच हिंद-प्रशांत क्षेत्र को लेकर हुई बातचीत से एक बार फिर उम्मीदों को बल मिला है। पिछले महीने जापान यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री ने वहां के प्रधानमंत्री शिंजो आबे के साथ बैठक में भी इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया था। सिंगापुर में भारत और अमेरिका के विदेश विभाग के अधिकारियों की बातचीत में भी यह मुद्दा अहम था। हिंद-प्रशांत क्षेत्र को मुक्त बनाने को लेकर भारत, अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया का दबाव बढ़ेगा, तो चीन को अपनी गतिविधियों पर विराम लगाना ही पड़ेगा। दरअसल, आज दुनिया में वही देश ताकतवर माने जाते हैं, जो आर्थिक रूप से समृद्ध हैं। इसलिए कोई भी देश सामरिक दबदबे से दूसरे देशों के साथ अपने वाणिज्यिक-व्यापारिक रिश्ते खराब नहीं करना चाहेगा। चीन को दुनिया भर में बाजार की जरूरत है, पर वह अपनी सामरिक ताकत की धौंस से भौगोलिक विस्तारवादी नीतियों को भी आगे बढ़ाने का प्रयास करता रहता है। मगर आज की स्थितियों में व्यापार के स्तर पर दोस्ती और सीमा पर ताकत दिखाने की रणनीति साथ-साथ नहीं चल सकती। इसलिए हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन को अपना रुख बदलना होगा।

सिंगापुर में बनी एक उम्मीद (हिन्दुस्तान)

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन, आसियान-भारत अनौपचारिक बैठक और क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (आरसीईपी) की मीटिंग में हिस्सा लेने के लिए पिछले हफ्ते सिंगापुर में थे। सिंगापुर फिनटेक फेस्टिवल में शिरकत करने के साथ ही वह पहले ऐसे शासनाध्यक्ष भी बन गए, जिन्हें 'फाइनेंशियल टेक्नोलॉजी' के इस सबसे बड़े आयोजन को संबोधित करने का सम्मान प्राप्त हुआ है। यहां उन्होंने ऐसी बैंकिंग टेक्नोलॉजी को लॉन्च किया, जिसे दुनिया भर के उन दो अरब लोगों के लिए तैयार किया गया है, जिनके पास अब भी बैंक खाता नहीं है।

बहरहाल, यह बदलते इंडो-पैसिफिक (हिंद-प्रशांत) क्षेत्र की भू-राजनीति और भू-आर्थिकी को समेटे था, जो कि प्रधानमंत्री के अधिकांश कार्यक्रमों के केंद्र में भी था। आरसीईपी की ही बात करें, तो लगभग 40 फीसदी वैश्विक कारोबार इन्हीं देशों में होता है। इसके 16 सदस्य देश हैं- 10 आसियान देश और शेष भारत, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड। ये सभी देश मिलकर मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने की कोशिशों में हैं। बेशक यह एक महत्वाकांक्षी योजना है और जल्द ही इस पर सहमति बनाने की बात भी की जा रही है, बावजूद इसके यह कई मामलों को लेकर उलझ गया है। इसे बनाने को लेकर बातें 2013 में ही शुरू हुई थीं, मगर उसकी प्रगति धीमी रही। हालांकि अब ट्रंप प्रशासन की संरक्षणवादी नीतियों ने इस पर बातचीत को एक नई गति दी है। ऐसे में, उम्मीद यही है कि इस संधि को अगले साल अमली जामा पहना दिया जाएगा। घरेलू राजनीति में आरसीईपी पर सहमति बनाने में भारत को भी मुश्किलें आई हैं और संभावना है कि टैरिफ कटौती पर कठिन फैसला अगले साल आम चुनाव के बाद ही लिया जाएगा।

पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में भारत ने शिरकत करने वाले 17 अन्य नेताओं के साथ स्मार्ट शहर, आईटी, संचार, समुद्री सहयोग और आतंकवाद जैसे मुद्दों पर चर्चा की। पूर्वी एशिया सम्मेलन अब हिंद-प्रशांत क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बहुपक्षीय ढांचे के रूप में उभरा है, जिसमें हर साल तमाम साझेदार देश हिस्सा लेते हैं और एक-दूसरे की सुनते हैं। 10 आसियान देशों के अलावा भारत, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमेरिका और रूस इसके सदस्य देश हैं। यह सम्मेलन भी भारत को ऐसा बेहतरीन मंच देता है कि वह क्षेत्रीय विकास के एक महत्वपूर्ण साझेदार के रूप में अपनी उपलब्धियों को सबके सामने रखे। इस साल बहुत सारे मामलों में चीन पर से निर्भरता खत्म होगी। फिर हिंद-प्रशांत क्षेत्र को मुक्त रखने से चीन का सैन्य दबदबा समाप्त होगा। वह पाकिस्तान को इसीलिए शह देता रहता है, आतंकवाद जैसे मसलों पर पाकिस्तान पर कस रहे शिकंजे के खिलाफ खड़ा होता रहता है कि उसके जरिए वह हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपना प्रभाव जमा सकेगा। पर अगर अमेरिका, जापान आदि देश हिंद-प्रशांत क्षेत्र को मुक्त रखने के पक्ष में खड़े होते हैं, तो चीन के लिए पाकिस्तान को लंबे समय तक शह देते रहना संभव नहीं होगा। इस लिहाज से सिंगापुर आसियान शिखर सम्मेलन व्यापार और प्रतिरक्षा मामलों में भारत के लिए उल्लेखनीय तो रहा ही, इसके जरिए विश्व बिरादरी में नए समीकरण भी बने।

पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री मोदी ने शांतिपूर्ण, मुक्त और समावेशी हिंद-प्रशांत क्षेत्र के लिए भारत के नजरिये को दोहराया और समुद्री सहयोग बढ़ाने व संतुलित आरसीईपी के लिए अपनी प्रतिबद्धता दोहराई।

सिंगापुर में प्रधानमंत्री मोदी ने आसियान-भारत द्विपक्षीय शिखर सम्मेलन में भी हिस्सा लिया, जिसमें आसियान-भारत स्मारक शिखर सम्मेलन की दिल्ली घोषणा में तय किए गए लक्ष्यों में प्रगति पर चर्चा की गई। इस साल के आसियान-भारत शिखर सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने सामरिक रूप से महत्वपूर्ण हिंद-प्रशांत क्षेत्र की समृद्धि के लिए जरूरी समुद्री सहयोग और कारोबार की महत्ता पर जोर डाला। भारत की 'एक्ट इस्ट पॉलिसी' का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि 'हिंद-प्रशांत क्षेत्र के क्षेत्रीय सुरक्षा ढांचे में इसकी महत्ता कोई छिपी बात नहीं है'। चीन पर निशाना साधते हुए उन्होंने यह भी आश्वस्त किया कि 'नियम आधारित क्षेत्रीय सुरक्षा ढांचा बनाने की दिशा में आसियान को लगातार समर्थन दिया जाएगा, क्योंकि यह क्षेत्रीय हितों और इसके शांतिपूर्ण विकास की दिशा में सर्वश्रेष्ठ प्रयास करता है'।

हिंद-प्रशांत में आसियान की महत्ता को भारत ने बार-बार जाहिर किया है। इस साल की शुरुआत में शांगरी-ला वार्ता के अपने भाषण में भी प्रधानमंत्री मोदी ने कहा था कि आसियान के साथ मिलकर भारत तहे-दिल से हिंद-प्रशांत क्षेत्र में लोकतांत्रिक व नियम-आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को बढ़ावा देगा। यह साझा स्थानों पर निर्बाध आवाजाही की अनुमति देता है और 'क्लब ऑफ लिमिटेड मेंबर्स' तक ही सीमित नहीं है। 'क्लब ऑफ लिमिटेड मेंबर्स' असल में, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की तरफ इशारा था।

दिलचस्प है कि 'क्वाड' को लेकर कुछ नहीं होने की बुदबुदाहट के बीच सिंगापुर में संयुक्त-सचिव स्तर की 'क्वाड' देशों की तीसरी बैठक भी हुई। 'क्वाड' में भारत, अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं। अब ये चारों देश उस लय को शायद ही बिगाड़ना चाहेंगे, जो धीरे-धीरे गति पकड़ रही है। बेशक इस दिशा में फिलहाल कुछ बड़ा नहीं हो रहा है, लेकिन ये चारों राष्ट्र किसी न किसी रूप में इसका लाभ उठाने को उत्सुक हैं।

जाहिर है, हिंद-प्रशांत क्षेत्र अब वैश्विक राजनीति और अर्थव्यवस्था के केंद्र में आ गया है, और हालिया घटनाक्रमों ने उन ट्रेंड को मजबूत किया है, जो पिछले कुछ समय से उभर रहे हैं। चीन इस क्षेत्र का सबसे महत्वपूर्ण खिलाड़ी है और बीजिंग खुद को क्षेत्रीय व वैश्विक ताकत के रूप में पेश करने को लेकर पहले से कहीं ज्यादा निश्चयी है। चीन की खुशकिस्मती यह भी है कि अमेरिका में फिलहाल एक ऐसा प्रशासन है, जिसमें उद्देश्यों को लेकर गंभीरता का अभाव है और जो इस क्षेत्र के लिए अपनी प्राथमिकताओं को प्रभावी रूप से जाहिर कर पाने में अब तक असमर्थ रहा है। इसने इस क्षेत्र की दीर्घकालिक स्थिरता में महत्वपूर्ण दखल रखने वाले भारत जैसे देशों के लिए भी इस संक्रमण-काल को महत्वपूर्ण बना दिया है। चीन की भूमिका बढ़ रही है और अमेरिका अब भी अपनी सुरक्षा प्रतिबद्धताओं को लेकर उलझन में है, ऐसे में भारत के लिए इस क्षेत्र में एक नया अवसर है। इतिहास के विपरीत, नई दिल्ली

अब उन तमाम दूसरे क्षेत्रीय खिलाड़ियों के साथ संबंध आगे बढ़ाने को लेकर उलझन में नहीं दिखता, जो क्षेत्र में सत्ता-संतुलन को स्थिर बनाने में भारतीय हितों का पोषण करते हैं। हालांकि बतौर आसियान सहयोगी भारत को रोजगार बढ़ाने की दिशा में खासतौर पर ध्यान देना होगा, जिसके लिए उसे घरेलू आर्थिक सुधार के एजेंडे को बढ़ावा देने, क्षेत्र के भीतर कनेक्टिविटी बढ़ाने और क्षेत्रीय संस्थानों में अधिक से अधिक अपनी उपस्थिति दर्ज कराने की जरूरत है। अपने दौरों में प्रधानमंत्री मोदी को इन्हीं प्राथमिकताओं पर ज्यादा जोर देना चाहिए।

GS World टीम...

सारांश

- हिंद-प्रशांत क्षेत्र के हितों की रक्षा के लिए अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया और भारत का एक अलग संगठन भी बनाने का प्रस्ताव है। ऐसे में सिंगापुर में अमेरिकी उपराष्ट्रपति माइक पेंस और भारतीय प्रधानमंत्री के बीच हिंद-प्रशांत क्षेत्र को लेकर हुई बातचीत से एक बार फिर उम्मीदों को बल मिला है। पिछले महीने जापान यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री ने वहां के प्रधानमंत्री शिंजो आबे के साथ बैठक में भी इस मुद्दे पर विचार-विमर्श किया था।
- इस बार सिंगापुर में आयोजित आसियान शिखर सम्मेलन में भारत एक बार फिर मजबूत राष्ट्र के रूप में उभरा। इस सम्मेलन के दौरान आसियान देशों के साथ वाणिज्य-व्यापार संबंधी समझौतों के अलावा उल्लेखनीय उपलब्धि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में शांति और समृद्धि संबंधी प्रयासों को थोड़ा और बल मिलना है।
- आसियान संगठन में इंडोनेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर, मलेशिया, फिलीपिंस, विएतनाम, म्यांमा, कंबोडिया, ब्रूनेई और लाओस के साथ-साथ भारत, आस्ट्रेलिया, चीन, जापान, न्यूजीलैंड, दक्षिण कोरिया, रूस और अमेरिका शामिल हैं। इस संगठन का मकसद परस्पर मिल कर वाणिज्य, व्यापार और शांति के लिए काम करना है।
- इसके ज्यादातर सदस्य देशों का ताल्लुक हिंद-प्रशांत क्षेत्र से है, इसलिए स्वाभाविक ही इस क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं पर चर्चा होती है। यों हिंद-प्रशांत क्षेत्र को मुक्त रखने पर जोर पिछले करीब दस सालों से दिया जा रहा है, पर आसियान शिखर सम्मेलन में पिछले चार सालों से इस पर गंभीरता से विचार-विमर्श होता है।
- हिंद-प्रशांत क्षेत्र में हिंद महासागर, प्रशांत महासागर और दक्षिण चीन सागर के हिस्से शामिल हैं। हालांकि चीन पूरे दक्षिण चीन सागर पर अपना अधिकार जताता है। इसी के तहत वह हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपनी सैन्य गतिविधियां लगातार बढ़ाता रहा है। पर मलेशिया, फिलीपिंस, विएतनाम, ताईवान, ब्रूनेई इसका विरोध करते रहे हैं।
- अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया भी चीन की इन गतिविधियों से चिंतित हैं। चूंकि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, इसलिए ये तीनों देश भारत को इसके लिए बल प्रदान करते रहते हैं। हिंद-प्रशांत क्षेत्र के हितों की रक्षा के लिए अमेरिका, जापान, आस्ट्रेलिया और भारत का एक अलग संगठन भी बनाने का प्रस्ताव है।
- सिंगापुर में आयोजित आसियान देशों का इस बार का शिखर सम्मेलन भारत के लिए कई तरह से उत्साहजनक है। प्रधानमंत्री ने फिनटेक फेस्टिवल में बैंकिंग प्रौद्योगिकी प्लेटफार्म एपिक्स का उद्घाटन किया। एपिक्स यानी अप्लिकेशन प्रोग्रामिंग इंटरफेस एक्सचेंज एक ऐसा सॉफ्टवेयर प्रोग्राम है, जिसके जरिए हमारे देश की कंपनियां दुनिया भर के वित्तीय संस्थानों से जुड़ सकेंगी।
- पिछले एक साल में आसियान देशों के साथ भारत के कारोबार में दस फीसद से अधिक बढ़ोतरी हुई है। भारत के कुल निर्यात का ग्यारह फीसद से अधिक हिस्सा सिर्फ आसियान देशों के साथ हुआ। इस तरह सम्मेलन से कारोबार के क्षेत्र में और बढ़ोतरी की उम्मीद बनी है।
- आसियान सम्मेलन का सबसे बड़ा मकसद आपस में कारोबार और सुरक्षा संबंधी मसलों पर एकजुट होकर काम करना है। आसियान देशों में भारत एक मजबूत अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है, इसलिए भी इसे खास तवज्जो दी जाती है।
- आसियान देशों का आर्थिक रूप से मजबूत होना चीन के लिए बड़ी चुनौती है। अभी तक विश्व बाजार के बड़े हिस्से पर चीन का कब्जा है। आसियान देशों का परस्पर कारोबारी संबंध प्रगाढ़ होने और तकनीक के जरिए एक-दूसरे देश की कंपनियों और वित्तीय संस्थाओं के जुड़ने से बहुत सारे मामलों में चीन पर से निर्भरता खत्म होगी। फिर हिंद-प्रशांत क्षेत्र को मुक्त रखने से चीन का सैन्य दबदबा समाप्त होगा।
- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन, आसियान-भारत अनौपचारिक बैठक और क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी (आरसीईपी) की मीटिंग में हिस्सा लेने के लिए पिछले हफ्ते सिंगापुर में थे। सिंगापुर फिनटेक फेस्टिवल में शिरकत करने के साथ ही वह पहले ऐसे शासनाध्यक्ष भी बन गए, जिन्हें 'फाइनेंशियल टेक्नोलॉजी' के इस सबसे बड़े आयोजन को संबोधित करने का सम्मान प्राप्त हुआ है।
- आरसीईपी की ही बात करें, तो लगभग 40 फीसदी वैश्विक कारोबार इन्हीं देशों में होता है। इसके 16 सदस्य देश हैं- 10 आसियान देश और शेष भारत, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड। ये सभी देश मिलकर मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने की कोशिशों में हैं।

- पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में भारत ने शिरकत करने वाले 17 अन्य नेताओं के साथ स्मार्ट शहर, आईटी, संचार, समुद्री सहयोग और आतंकवाद जैसे मुद्दों पर चर्चा की। पूर्वी एशिया सम्मेलन अब हिंद-प्रशांत क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण बहुपक्षीय ढांचे के रूप में उभरा है, जिसमें हर साल तमाम साझेदार देश हिस्सा लेते हैं और एक-दूसरे की सुनते हैं। 10 आसियान देशों के अलावा भारत, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमेरिका और रूस इसके सदस्य देश हैं।
- सिंगापुर में प्रधानमंत्री मोदी ने आसियान-भारत द्विपक्षीय शिखर सम्मेलन में भी हिस्सा लिया, जिसमें आसियान-भारत स्मारक शिखर सम्मेलन की दिल्ली घोषणा में तय किए गए लक्ष्यों में प्रगति पर चर्चा की गई। इस साल के आसियान-भारत शिखर सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने सामरिक रूप से महत्वपूर्ण हिंद-प्रशांत क्षेत्र की समृद्धि के लिए जरूरी समुद्री सहयोग और कारोबार की महत्ता पर जोर डाला। भारत की 'एक्ट इस्ट पॉलिसी' का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि 'हिंद-प्रशांत क्षेत्र के क्षेत्रीय सुरक्षा ढांचे में इसकी महत्ता कोई छिपी बात नहीं है'।
- हिंद-प्रशांत में आसियान की महत्ता को भारत ने बार-बार जाहिर किया है। इस साल की शुरुआत में शांगरी-ला वार्ता के अपने भाषण में भी प्रधानमंत्री मोदी ने कहा था कि आसियान के साथ मिलकर भारत तहे-दिल से हिंद-प्रशांत क्षेत्र में लोकतांत्रिक व नियम-आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को बढ़ावा देगा। यह साझा स्थानों पर निर्बाध आवाजाही की अनुमति देता है और 'क्लब ऑफ लिमिटेड मेंबर्स' तक ही सीमित नहीं है। 'क्लब ऑफ लिमिटेड मेंबर्स' असल में, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की तरफ इशारा था।
- दिलचस्प है कि 'क्वाड' को लेकर कुछ नहीं होने की बुदबुदाहट के बीच सिंगापुर में संयुक्त-सचिव स्तर की 'क्वाड' देशों की तीसरी बैठक भी हुई। 'क्वाड' में भारत, अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं।
- बतौर आसियान सहयोगी भारत को रोजगार बढ़ाने की दिशा में खासतौर पर ध्यान देना होगा, जिसके लिए उसे घरेलू आर्थिक सुधार के एजेंडे को बढ़ावा देने, क्षेत्र के भीतर कनेक्टिविटी बढ़ाने और क्षेत्रीय संस्थानों में अधिक से अधिक अपनी उपस्थिति दर्ज कराने की जरूरत है।

आसियान

- दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (एसोसिएशन ऑफ साउथ ईस्ट एशियन नेशंस, लघु:आसियान) दस दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों का समूह है, जो आपस में आर्थिक विकास और समृद्धि को बढ़ावा देने और क्षेत्र में शांति और स्थिरता कायम करने के लिए भी कार्य करते हैं।
- इसका मुख्यालय इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता में है। आसियान की स्थापना 8 अगस्त, 1967 को थाईलैंड की राजधानी बैंकॉक में की गई थी। इसके संस्थापक सदस्य थाईलैंड, इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलिपींस और सिंगापुर थे।
- ब्रुनेई 1984 में और वियतनाम को 1995 में शामिल किया गया था। फिर 1997 में लाओस और म्यांमार को इसका हिस्सा बनाया गया। 1999 में कंबोडिया में को इसका सदस्य बनाया गया। 1976 में आसियान की पहली बैठक हुई। जिसका एजेंडा शांति और सहयोग था।
- अपने चार्टर में आसियान के उद्देश्य के बारे में बताया गया है। पहला उद्देश्य सदस्य देशों की संप्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता और स्वतंत्रता को कायम रखा जाए, इसके साथ ही झगड़ों का शांतिपूर्ण निपटारा हो। सेक्रेट्री जनरल, आसियान द्वारा पारित किए प्रस्तावों को लागू करवाने और कार्य में सहयोग प्रदान करने का काम करता है। इसका कार्यकाल पांच वर्ष का होता है।
- आसियान प्लस तीन (एपीटी) एक ऐसा मंच है जो आसियान के सदस्य देशों तथा तीन पूर्वी एशियाई देशों चीन, जापान तथा दक्षिण कोरिया के मध्य सामंजस्य का कार्य करता है। दस आसियान देशों व तीन पूर्वी एशियाई देशों सरकारी नेता, मंत्री तथा वरिष्ठ अधिकारी विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करते हैं।
- 1994 में आसियान ने एशियाई क्षेत्रीय फोरम की स्थापना की। इसका उद्देश्य सुरक्षा को बढ़ावा देना था। इसके सदस्य अमेरिका, रूस, भारत, चीन, जापान और उत्तरी कोरिया 23 सदस्य हैं। 1992 में भारत असियान का 'क्षेत्रीय संवाद भागीदार' और 1996 में पूर्ण सदस्य बन गया। चीन की भी कोशिश है कि उसे भी आसियान का पूर्ण सदस्य बना जाए।
- 2015 में मलेशिया की राजधानी कुआलालम्पुर में आयोजित इसकी बैठक में आर्थिक नीति पर एक बड़ा फैसला लिया गया। जिसमें सभी सदस्य देशों को मिलाकर आर्थिक समुदाय बनाने का फैसला लिया गया। 31 दिसंबर 2015 में इसको बना भी लिया गया। जिसमें सदस्य कई आर्थिक समझौतों से बंधे हुए हैं।
- आसियान का मुख्यालय जकार्ता (इंडोनेशिया) में है। वर्तमान में इस संगठन के 10 स्थायी सदस्य हैं। भारत इस संगठन का सदस्य नही है क्योंकि आसियान दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों का संगठन है जबकि भारत दक्षिण-एशिया में स्थित है। जुलाई 23, 1996 को; आसियान ने भारत को सलाहकार देश का दर्जा दिया था।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. आसियान देशों के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. आसियान ने 1994 में एशियाई क्षेत्रीय फोरम की स्थापना की। इसका उद्देश्य सुरक्षा को बढ़ावा देना था।
   2. भारत 1992 में आसियान देशों का क्षेत्रीय संवाद भागीदार देश बना।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-c)

2. बैंकॉक घोषणा-पत्र, 1967 का संबंध निम्नलिखित में से किस संगठन से है?
   (a) सार्क
   (b) यूनाइटेड नेशन्स
   (c) बिम्स्टेक
   (d) आसियान

   (उत्तर-d)

3. भारत-आसियान रजत जयंती शिखर सम्मेलन 2018 का आयोजन कहाँ हुआ?
   (a) मुम्बई
   (b) दिल्ली
   (c) कोलकाता
   (d) जयपुर

   (उत्तर-b)

4. भारत-आसियान आर्थिक व्यापार के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. पिछले दशक में आसियान देशों में भारत का निवेश 70 अरब डॉलर रहा है।
   2. आसियान क्षेत्र भारत का चौथा सबसे बड़ा कारोबारी साझेदार है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-c)

5. हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन की बढ़ती सैन्य गतिविधियों की वजह से भारत को भी खतरा है। भारतीय- आसियान संबंध इस चुनौती से निपटने में किस प्रकार सहायता कर सकते हैं?

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. भारत निम्नलिखित में से किसका/किनका सदस्य है?
   1. एशिया-प्रशान्त आर्थिक सहयोग (एशिया- पैसिफिक इकोनॉमिक को-ऑपरेशन)
   2. दक्षिण- पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन (एसोसिएशन ऑफ साउथ- ईस्ट एशियन नेशन्स)
   3. पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन (ईस्ट एशिया समिट)

   नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए-
   (a) 1 और 2
   (b) केवल 3
   (c) 1, 2 और 3
   (d) भारत इनमें से किसी का सदस्य नहीं है।

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2015, उत्तर-b)

2. 'विशिष्ट रक्षोपाय क्रियाविधि' (स्पेशल सफेगार्ड में मेकेनिज्मस्) मुहावरा निम्नलिखित में से किस एक के कार्यों के संदर्भ में समाचारों में प्रायः चर्चा में आता रहता है?
   (a) संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूनाइटेड नेशन्स इनवायरमेंट प्रोग्राम
   (b) विश्व व्यापार संगठन (वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गेनाइजेशन)
   (c) ASEAN- भारत स्वतंत्र व्यापार समझौता (ASEAN - इंडिया फ्री ट्रेड एग्रीमेंट)
   (d) G-20 शिखर सम्मेलन

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2010, उत्तर-b)

3. रीजनल कॉम्प्रिहेन्सिव इकोनॉमिक पार्टनरशिप (Regional Comprehensive Economic partnership) पद प्रायः समाचारों में देशों के एक समूह के मामलों के संदर्भ में आता है। देशों के उस समूह को क्या कहा जाता है?
   (a) G20 (b) ASEAN
   (c) SCO (d) SAARC

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2016, उत्तर-b)

4. गुजराल सिद्धांत से क्या अभिप्राय है? क्या आज इसकी कोई प्रासंगिकता है? विवेचना कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2013)

5. शीतयुद्धोत्तर अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य के संदर्भ में, भारत की पूर्वोन्मुखी नीति के आर्थिक और सामरिक आयामों का मूल्यांकन कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2016)

6. दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था एवं समाज में भारतीय प्रवासियों को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। इस संदर्भ में, दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय प्रवासियों की भूमिका का मूल्य निरूपण कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-2, वर्ष-2017)

GS World Committed To Excellence

करतारपुर साहिब और भारत-पाकिस्तान संबंध

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-2 (अंतर्राष्ट्रीय संबंध) से संबंधित है।

गुरु नानक देव जी की 550 वीं जयंती के मद्देनजर भारत के सिख श्रद्धालुओं के लिए करतारपुर साहिब गलियारा खोलने का पाकिस्तान का फैसला बहुत बड़ी राहत है। पिछले 70 साल से इस फैसले का इंतजार हो रहा था। भारत-पाकिस्तान के ठंडे पड़ते रिश्तों में भी इससे नई गरमाहट आ सकती है। इस संदर्भ में हिन्दी समाचार पत्रों 'नवभारत टाइम्स' तथा 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित लेखों का सार दिया जा रहा है, जिसे GS World टीम द्वारा इस मुद्दे से जुड़ी अन्य सहायक जानकारियों को उपलब्ध कराकर एक समग्रता प्रदान की जा रही है।

कॉरिडोर और कूटनीति (नवभारत टाइम्स)

श्री करतारपुर साहिब के लिए भारत और पाकिस्तान के बीच एक सुरक्षित कॉरिडोर की नींव दोनों तरफ रख दी गई। सोमवार को पंजाब के गुरदासपुर जिले के मान गांव में उपराष्ट्रपति वैंकेया नायडू और सीएम कैप्टन अमरिंदर सिंह ने इसका शिलान्यास किया, जबकि बुधवार को पाकिस्तान में इसकी बुनियाद प्रधानमंत्री इमरान खान ने रखी। इस अवसर पर भारत से केंद्रीय मंत्री हरदीप पुरी और हरसिमरत कौर के साथ-साथ पंजाब के कैबिनेट मंत्री नवजोत सिंह सिद्धू भी वहां मौजूद थे।

इस गलियारे के निर्माण को लेकर भारतीय राजनीतिक वर्ग के रवैये से पंजाब के श्रद्धालुओं के साथ-साथ उन लोगों का उत्साह भी थोड़ा फीका पड़ा, जो दोनों मुल्कों के बीच बेहतर रिश्तों के हिमायती हैं। कम से कम इस मौके को कूटनीति से परे रखा जा सकता था। सोमवार को शिलान्यास समारोह में पंजाब के सीएम कैप्टन अमरिंदर सिंह ने पाक आर्मी चीफ कमर जावेद बाजवा को भारतीय जवानों की मौत के लिए जवाबदेह ठहराया। उन्होंने कहा कि बाजवा भारतीय जवानों पर हमले करवा कर बुजदिली दिखा रहे हैं। उपराष्ट्रपति ने भी आतंकवाद का मुद्दा उठाया।

विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा कि कॉरिडोर निर्माण का अर्थ यह नहीं है कि पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय वार्ता शुरू हो जाएगी। ऐसा लगा जैसे भारतीय राजनेता अपने स्तर पर सफाई दो रहे हों कि कॉरिडोर से जोड़कर उनके प्रति कोई धारणा न बनाई जाए। क्या यह देश में चल रहे असेंबली चुनावों का दबाव है? सचाई यह है कि जनता को कोई गलतफहमी नहीं है। पाकिस्तान के रवैये को वह भी देख रही है और यह मानकर चल रही है कि दोनों देशों के रिश्ते सुधारने के लिए यह सही वक्त नहीं है। लेकिन भारत के लोग, खासकर सीमा पर रहने वाले लोग यह भी चाहते हैं कि भारत और पाकिस्तान के बीच जनता के स्तर पर संपर्क जारी रहे। यह भावना दोनों तरफ है।

आतंकवाद को औजार बनाने वाले लोग उंगलियों पर गिने जाने लायक हैं, लेकिन सांस्कृतिक आदान-प्रदान बनाए रखने की सोच वाले लोगों की तादाद करोड़ों में नहीं तो लाखों में जरूर है। करतारपुर साहिब कॉरिडोर इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस अवसर पर कड़वाहट भरी बातें इस प्रॉजेक्ट की सफलता को लेकर आशंकाएं पैदा करती हैं।

मुमकिन है, पाकिस्तान ने ब्रिटेन और कनाडा के कुछ सिखों के बीच सिर उठा रहे खालिस्तानी स्वर को भांपकर उसे हवा देने के लिए ही इस कॉरिडोर पर मोहर लगाई हो। पाकिस्तान में कॉरिडोर की नींव रखे जाने के मौके पर खालिस्तान समर्थक गोपाल चावला की मौजदूगी से इस संदेह को बल मिलता है। बावजूद इसके, हमारा संयम ही हमारी शक्ति है। सार्क के लिए पाक आमंत्रण को ठुकराकर भारत ने अपना कूटनीतिक स्टैंड स्पष्ट कर दिया है। लेकिन कॉरिडोर जैसी 'पीपल टू पीपल' परियोजनाओं पर हमारा रवैया सकारात्मक ही होना चाहिए।

करतारपुर साहिब खोलने का फैसला (नवभारत टाइम्स)

गुरु नानक देव जी की 550 वीं जयंती के मद्देनजर भारत के सिख श्रद्धालुओं के लिए करतारपुर साहिब गलियारा खोलने का पाकिस्तान का फैसला बहुत बड़ी राहत है। न केवल पिछले 70 साल से इस फैसले का इंतजार कर रहे सिख श्रद्धालु इस फैसले से गदगद हैं बल्कि भारत-पाकिस्तान के ठंडे पड़ते रिश्तों में भी इससे नई गरमाहट आ सकती है। करतारपुर साहिब सिखों के सबसे पवित्र तीर्थस्थलों में शुमार होता है। यह स्थान भारतीय सीमा से करीब चार किलोमीटर दूर है और इतनी सी दूरी के चलते भारतीय सिखों को दूरबीन से अपने इस पवित्र गुरुद्वारा साहिब के दर्शन करके संतोष करना पड़ता था। दोनों देशों में बनी नई सहमति के अनुसार भारत सरकार गुरदासपुर जिला स्थित डेरा बाबा नानक से अंतरराष्ट्रीय सीमा तक कॉरिडोर का निर्माण करेगी और पाकिस्तान सरकार सरहद से करतारपुर साहिब तक। श्रद्धालुओं को सीमा पर स्लिप दी जाएगी, जिसके आधार पर वे करतारपुर साहिब तक आसानी से पहुंचेंगे और दर्शन करके शाम तक वापस लौट आएंगे। इस फैसले ने बताया है कि संबंधों के बुरे दौर में भी सौहार्द बनाने वाले कुछेक कदमों के जरिए माहौल को मैत्रीपूर्ण बनाया जा सकता है।

पिछले कुछ वर्षों से भारत-पाकिस्तान संबंधों में सुधार के सारे उपाय नाकाम होते दिखे। जब भी कोई पहल होती, आतंकवाद से जुड़ी कोई न कोई ऐसी घटना होती जो उस पहल को बेअसर कर देती। आखिर भारत ने यह स्टैंड ले लिया कि आतंकवाद और बातचीत साथ-साथ नहीं चल सकते। दूसरी तरफ पाकिस्तान ऐसा कोई कदम नहीं उठा सका जिससे यह लगे कि वहां आतंकवाद की नकेल कसी जा रही है। स्वाभाविक रूप से नए प्रधानमंत्री इमरान खान का बातचीत का प्रस्ताव कारगर नहीं साबित हुआ। लेकिन औपचारिक बातचीत न करते हुए भी दोनों पक्षों ने करतारपुर साहिब संबंधी प्रस्ताव को आगे बढ़ाया और पाकिस्तान ने इस पर उपयुक्त फैसला किया, जो बताता है कि संबंधों में सुधार की इच्छा दोनों तरफ कायम है। हालांकि दोनों ही तरफ संबंधों को बिगाड़ने की इच्छा रखने वाले तत्व भी बड़ी संख्या में हैं।

वक्त की जरूरत यह है कि दोनों देशों में माहौल बिगाड़ने वालों की साजिशों को समझा जाए और इन साजिशों को हर हाल में नाकाम करने का संकल्प कमजोर न पड़ने दिया जाए। इसका एक अच्छा तरीका यह हो सकता है कि दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण संबंधों में आम लोगों की अधिकाधिक दिलचस्पी पैदा की जाए। यानी पीपल टु पीपल कंटैक्ट बढ़ाने पर ज्यादा से ज्यादा जोर दिया जाए। व्यापार को अधिक से अधिक बढ़ाने के उपाय किए जाएं। ये सब होगा तो आतंकी और विघ्नकारी तत्व अपने आप हाशिये पर पहुंचते जाएंगे और कभी इक्का-दुक्का भड़काने वाली घटनाएं हो भी गईं तो उनका आम लोगों की भावनाओं पर ज्यादा असर नहीं होगा।

राजनयिक का अपमान (हिन्दुस्तान)

गुरुवार को जब केंद्रीय मंत्रिमंडल ने पंजाब के करतारपुर कॉरिडोर पर अपनी इजाजत की मोहर लगाई, तो एकबारगी लगा था कि समझदारी लौटने लगी है। इसके एक दिन पहले ही पाकिस्तान ने भी इस कॉरिडोर का काम शुरू करने की घोषणा करके उम्मीद बंधा दी थी। पाकिस्तान के तमाम नेताओं और सेनाध्यक्ष ने इस मौके का फायदा उठाते हुए भारत से यह आग्रह तक कर डाला कि वह पाकिस्तान से शांति वार्ता अब शुरू कर ही दे। लेकिन बस एक दिन में ही उम्मीदों का सारा शीराजा बिखर गया। शुक्रवार को गुरुद्वारा सच्चा सौदा में भारतीय राजनयिकों के साथ जो बर्ताव किया गया, वह बताता है कि चीजें अभी बदली नहीं हैं या दूसरे शब्दों में पाकिस्तान में वे ताकतें सक्रिय हो गई हैं, जो चीजों को बदलने नहीं देना चाहतीं। गुरु नानक देव के 550वें जयंती वर्ष में सिख तीर्थयात्रियों का एक जत्था इन दिनों पाकिस्तान गया हुआ है। जिस समय ये तीर्थयात्री गुरुद्वारा सच्चा सौदा में थे, उस दौरान भारतीय राजनयिक भी वहां गए। लेकिन उन्हें न सिर्फ गुरुद्वारे में प्रवेश करने से रोक दिया गया, बल्कि उनका अपमान भी किया गया। हालांकि पाकिस्तान के अधिकारियों ने यह काम खुद नहीं किया, बल्कि वहां मौजूद जिन लोगों से करवाया, वे खालिस्तानी तत्व थे, या सिख वेश में आईएसआई एजेंट।

सिख गुरुद्वारों की एक विशेषता यह होती है कि वहां कोई भी किसी भी वक्त जा सकता है। कहीं भी किसी भी तरह की रोक-टोक नहीं होती। चाहे वह व्यक्ति किसी भी धर्म, संप्रदाय या जाति का हो। बस सिर ढकने की एक छोटी सी मर्यादा का ख्याल रखना होता है। पर किसी तरह की कोई रोक नहीं होती। सिर्फ भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया के किसी भी गुरुद्वारे में। यह शायद पहली बड़ी घटना होगी, जब इस तरह से किसी को गुरुद्वारे में घुसने से रोका गया। जाहिर है, अगर पाकिस्तान के किसी गुरुद्वारे में परंपरा के खिलाफ जाकर कोई काम हो रहा है, तो उसके पीछे बड़ी रणनीति है। यह शिकायत लंबे समय से रही है कि सिख तीर्थयात्री जब पाकिस्तान जाते हैं, तो वह इस मौके का फायदा उनके सामने खालिस्तान का प्रचार करने के लिए उठाता है। भारतीय राजनयिकों की मौजूदगी में यह काम मुश्किल हो सकता था। इसमें पोल भी खुल सकती थी और यह भी जगजाहिर हो सकता था कि इस प्रचार में कौन से तत्व शामिल हैं? इससे बचने का पाकिस्तान के पास एक ही तरीका था कि राजनयिकों को गुरुद्वारे में जाने ही न दिया जाए। यह काम खुद पाकिस्तान आधिकारिक तौर पर नहीं कर सकता था, इसलिए दूसरे लोगों का सहारा लिया गया।

गुरुद्वारा सच्चा सौदा की इस घटना को हमें कुछ ताजा घटनाओं से जोड़कर भी देखना होगा। हाल ही में अमृतसर के निरंकारी भवन में हुए आतंकवादी हमले की जांच अभी तक जहां पहुंची है, उससे सारी उंगलियां पाकिस्तान की तरफ ही उठ रही हैं। अभी कुछ समय पहले ही थल सेना अध्यक्ष ने खुफिया सूचनाओं के आधार पर यह जानकारी दी थी कि पाकिस्तान भारत के पंजाब में फिर से गड़बड़ी पैदा करना चाहता है, जिसके लिए वह बचे-खुचे खालिस्तानी आतंकवादियों को शह दे रहा है। इसका अर्थ है कि पठानकोट एयरबेस पर आतंकवादी हमले के बाद पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आईएसआई ने अपनी रणनीति बदल दी है। जाहिर है कि हमारे लिए यह लगातार सतर्क रहने का समय है, सतर्कता से हम नापाक इरादों को मात दे पाएंगे।

करतारपुर कॉरिडोर (हिन्दुस्तान)

गुरु नानक जयंती से ठीक एक दिन पहले करतारपुर कॉरिडोर को हरी झंडी दिखाकर केंद्रीय मंत्रिमंडल ने सिख संगत को एक अच्छा तोहफा दे दिया है। सिखों के पहले गुरु के जीवन में करतारपुर काफी महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम 18 साल यहीं गुजारे थे। इस लिहाज से यह सिखों का महत्वपूर्ण तीर्थ है। दिक्कत यह है कि करतारपुर भारतीय सीमा से चार किलोमीटर दूर पाकिस्तान के नरोवाल जिले में पड़ता है। लंबे समय से यह मांग की जा रही थी कि सिख तीर्थ यात्रियों के लिए एक कॉरिडोर बनाया जाए, जिससे वे बिना किसी वीजा या विशेष अनुमति के दर्शन के लिए वहां जा सकें। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की लाहौर बस यात्रा के समय से ही इसकी योजना बन रही थी। अभी तक सिख संगत को ये दर्शन गुरुदासपुर के डेरा बाबा नानक से दूरबीन के जरिए करने पड़ते थे। बीच में जो चार किलोमीटर का जंगल है, उसमें हाथी घास उग आती थी, जिसे विशेष अवसरों पर पाकिस्तानी सेना कटवा देती थी, ताकि दर्शन में कोई दिक्कत न आए। कॉरिडोर बनने का अर्थ होगा कि अब सीमा की कंटीली तारें सिख श्रद्धालुओं के आडे नहीं आएंगी और वे दूरबीन से दर्शन करने की बजाय सीधे वहां के गुरुद्वारे जाकर मत्था टेक सकेंगे। गुरुवार को केंद्रीय मंत्रिमंडल के इस परियोजना को हरी झंडी दिखाने के ठीक एक दिन पहले पाकिस्तान सरकार ने भी इस परियोजना को न केवल हरी झंडी दिखा दी थी, बल्कि यह घोषणा भी कर दी थी कि जल्द ही प्रधानमंत्री इमरान खान इस परियोजना का शिलान्यास करने करतारपुर जाएंगे। इसमें पाकिस्तान की पहल जरूरी भी थी, क्योंकि सारा काम उसी के क्षेत्र में होना था और भारत को तो सिर्फ तीर्थयात्रियों के लिए रास्ता खोलना था।

यह भी मुमकिन है कि इसके लिए दोनों देशों की सरकारों में कोई सहमति भी बन गई हो, लेकिन घरेलू राजनीति के चलते दोनों उसे जगजाहिर न करना चाहते हों। अगस्त महीने में जब इमरान खान प्रधानमंत्री पद की शपथ ले रहे थे और भारत से पंजाब सरकार में मंत्री व पूर्व क्रिकेट खिलाड़ी नवजोत सिंह सिद्धू इसके लिए वहां गए, तो इस कॉरिडोर के मामले पर बिना वजह एक बतंगड़ खड़ा हो गया था और अचानक लगने लगा था कि यह मामला अब खटाई में पड़ जाएगा। मगर अच्छी बात यह है कि सभी ने इस विवाद को पीछे छोड़ दिया है।

हालांकि यह कॉरिडोर दोनों देशों के रिश्तों को नया आयाम देगा यह उम्मीद फिलहाल नहीं है। अभी हम इतनी ही उम्मीद बांध सकते हैं कि भारत-पाकिस्तान रिश्तों के उतार-चढ़ाव का इस कॉरिडोर पर कोई असर न पडे। दोनों देशों के बीच कई बार सद्भावना के सेतु बने, मगर तनाव की हल्की सी दस्तक आते ही वे टूट गए। इसका अपवाद दिल्ली और लाहौर के बीच चलने वाली बस सेवा सदा-ए-सरहद और दोनों देशों के बीच चलने वाली ट्रेन समझौता एक्सप्रेस ही हैं, जो कई साल से अबाध चल रही हैं और जिनको कारगिल युद्ध के समय भी बंद नहीं होने दिया गया था। करतारपुर कॉरिडोर के लिए भी ऐसी ही सोच की जरूरत है। दोनों देशों के बीच जब तक वैमनस्य है और शक-शुब्हें हैं, तब तक खतरे भी हैं। यह डर हमेशा रहेगा कि पाकिस्तान कहीं इसका बेजा फायदा उठाने की कोशिश न करे। हमें सतर्क रहना होगा, लेकिन यह डर कहीं इस अच्छे प्रयास के आड़े न आए, यह कोशिश होनी चाहिए।

GS World Committed To Excellence

करतारपुर की राह (हिन्दुस्तान)

पाकिस्तान स्थित गुरद्वारा दरबार साहिब करतारपुर तक जाने का रास्ता साफ हो गया है तो सिख समुदाय के लिए इससे बड़ी खुशी की बात और क्या होगी। सिखों लंबे समय से इसकी मांग कर रहे थे और भारत भी पिछले दो दशकों से इस प्रयास में लगा था। लेकिन पाकिस्तान के भारत विरोधी रवैए के कारण यह मामला परवान नहीं चढ़ पा रहा था।

पाकिस्तान स्थित गुरद्वारा दरबार साहिब करतारपुर तक जाने का रास्ता साफ हो गया है तो सिख समुदाय के लिए इससे बड़ी खुशी की बात और क्या होगी। सिखों लंबे समय से इसकी मांग कर रहे थे और भारत भी पिछले दो दशकों से इस प्रयास में लगा था। लेकिन पाकिस्तान के भारत विरोधी रवैए के कारण यह मामला परवान नहीं चढ़ पा रहा था। अब हालात बदले हैं। गुरुनानक जयंती से ठीक एक दिन पहले भारत सरकार ने फैसला किया कि पंजाब के गुरदासपुर जिले में डेरा बाबा नानक से भारत-पाक अंतरराष्ट्रीय सीमा तक एक गलियारा बनाया जाएगा, ताकि गुरद्वारा साहिब करतारपुर तक जाने का रास्ता बन सके।

भारत के फैसले के बाद पाकिस्तान ने भी सद्भाव दिखाया और अपने यहां करतारपुर गुरद्वारे आने वाले श्रद्धालुओं को सारी सुविधाएं देने की बात कही। डेरा बाबा नानक से सीमा तक बनाया जाने वाला यह गलियारा अंतरराष्ट्रीय स्तर का होगा और तीर्थयात्रियों को किसी भी कागजी औपचारिकता के लिए भटकना नहीं पड़ेगा। सारी सुविधाएं सीमा पर बने केंद्र पर ही मिलेंगी। चुनावी साल के लिहाज से भी सरकार का यह फैसला महत्त्वपूर्ण है। भारत के राष्ट्रपति और पंजाब के मुख्यमंत्री 26 नवंबर को इसकी नींव रखेंगे। ऐसी ही फुर्ती पाकिस्तान ने भी दिखाई है। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान भी 28 नवंबर को अपने यहां एक समारोह में गुरद्वारे से अंतरराष्ट्रीय सीमा तक गलियारा निर्माण का उद्घाटन करेंगे।

सिखों के लिए करतारपुर का यह गुरद्वारा एक अहम पवित्र स्थान है। अभी तक लोग सीमा के पास से दूरबीनों से ही इसकी झलक भर देख पाते हैं। लेकिन भारत सरकार की ठोस पहल और पाकिस्तान के सकारात्मक रुख से अब सीधे दर्शन हो सकेंगे। पाकिस्तान का यह कदम सिख समुदाय के लिए जितना सुकून देने वाला है, उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दोनों देशों के बीच दोस्ती की नई शुरुआत भी हो सकती है। पाकिस्तान का भारत के प्रति जो रुख रहा है उसे देखते हुए यह कल्पना करना मुश्किल था कि वह करतारपुर का रास्ता खोलने के लिए राजी होगा। करतारपुर साहिब तक श्रद्धालुओं को जाने देने का मामला करीब बीस साल से चला आ रहा था। 1999, 2004 फिर 2008 में भारत ने इस मुद्दे को पाकिस्तान के समक्ष उठाया था, लेकिन पाकिस्तानी हुकूमत की हठधर्मिता के कारण सारी कोशिशें बेकार गईं। हालांकि लंबे समय तक दोनों मुल्कों के बीच मौखिक तौर इस बारे में बातचीत चलती रही थी कि करतारपुर तक बिना पासपोर्ट-वीजा के श्रद्धालुओं को आने दिया जाए, लेकिन कोई फैसला नहीं हो पा रहा था।

इमरान खान के शपथग्रहण समारोह से लौटने के बाद पंजाब सरकार के मंत्री नवजोत सिंह सिद्धू ने दावा किया था कि पाकिस्तान के सेना प्रमुख ने उन्हें करतारपुर गलियारा खोलने का संकेत दिया है। हालांकि तब इस मसले पर हंगामा मचा था। लेकिन इन बातों को भुला दिया जाना चाहिए और भारत सरकार के फैसले व पाकिस्तान के सकारात्मक रुख की तारीफ की जानी चाहिए। लंबे समय से भारत और पाकिस्तान के बीच जिस तरह के तनावपूर्ण रिश्ते चले आ रहे हैं, उसे देखते हुए यह वक्त रिश्तों में नई जान फूंक सकता है। यों पाकिस्तान हुकूमत की जैसी फितरत है, उसे देखते हुए उसके किसी भी कदम पर भरोसा करना आसान नहीं है। भारतीय उच्चायोग के राजनयिकों को परेशान करने और उन्हें 21-22 नवंबर को गुरुद्वारा ननकाना साहब और गुरुद्वारा सच्चा सौदा में भारतीय श्रद्धालुओं से मिलने की अनुमति नहीं देने की जो खबरें आई हैं, वे पाकिस्तान की मंशा को उजागर करती हैं। ऐसे में यह देखना होगा कि करतारपुर गलियारा खोलने के बाद क्या पाकिस्तान श्रद्धालुओं कोबिना रोकटोक आने देता है!

GS World टीम...

सारांश

- श्री करतारपुर साहिब के लिए भारत और पाकिस्तान के बीच एक सुरक्षित कॉरिडोर की नींव दोनों तरफ रख दी गई। सोमवार को पंजाब के गुरदासपुर जिले के मान गांव में उपराष्ट्रपति वैंकेया नायडू और सीएम कैप्टन अमरिंदर सिंह ने इसका शिलान्यास किया, जबकि बुधवार को पाकिस्तान में इसकी बुनियाद प्रधानमंत्री इमरान खान ने रखी।
- सोमवार को शिलान्यास समारोह में पंजाब के सीएम कैप्टन अमरिंदर सिंह ने पाक आर्मी चीफ कमर जावेद बाजवा को भारतीय जवानों की मौत के लिए जवाबदेह ठहराया। उन्होंने कहा कि बाजवा भारतीय जवानों पर हमले करवा कर बुजदिली दिखा रहे हैं। उपराष्ट्रपति ने भी आतंकवाद का मुद्दा उठाया।
- विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा कि कॉरिडोर निर्माण का अर्थ यह नहीं है कि पाकिस्तान के साथ द्विपक्षीय वार्ता शुरू हो जाएगी। ऐसा लगा जैसे भारतीय राजनेता अपने स्तर पर सफाई दो रहे हों कि कॉरिडोर से जोड़कर उनके प्रति कोई धारणा न बनाई जाए। क्या यह देश में चल रहे असेंबली चुनावों का दबाव है?
- पाकिस्तान में कॉरिडोर की नींव रखे जाने के मौके पर खालिस्तान समर्थक गोपाल चावला की मौजदूगी से इस संदेह को बल मिलता है। बावजूद इसके, हमारा संयम ही हमारी शक्ति है। सार्क के लिए पाक आमंत्रण को ठुकराकर भारत ने अपना कूटनीतिक स्टैंड स्पष्ट कर दिया है। लेकिन कॉरिडोर जैसी 'पीपल टू पीपल' परियोजनाओं पर हमारा रवैया सकारात्मक ही होना चाहिए।
- गुरु नानक देव जी की 550 वीं जयंती के मद्देनजर भारत के सिख श्रद्धालुओं के लिए करतारपुर साहिब गलियारा खोलने का पाकिस्तान का फैसला बहुत बड़ी राहत है। न केवल पिछले 70 साल से इस फैसले का इंतजार कर रहे सिख श्रद्धालु इस फैसले से गदगद हैं बल्कि भारत-पाकिस्तान के ठंडे पड़ते रिश्तों में भी इससे नई गरमाहट आ सकती है।

- करतारपुर साहिब सिखों के सबसे पवित्र तीर्थस्थलों में शुमार होता है। यह स्थान भारतीय सीमा से करीब चार किलोमीटर दूर है और इतनी सी दूरी के चलते भारतीय सिखों को दूरबीन से अपने इस पवित्र गुरुद्वारा साहिब के दर्शन करके संतोष करना पड़ता था।
- दोनों देशों में बनी नई सहमति के अनुसार भारत सरकार गुरदासपुर जिला स्थित डेरा बाबा नानक से अंतरराष्ट्रीय सीमा तक कॉरिडोर का निर्माण करेगी और पाकिस्तान सरकार सरहद से करतारपुर साहिब तक।
- श्रद्धालुओं को सीमा पर स्लिप दी जाएगी, जिसके आधार पर वे करतारपुर साहिब तक आसानी से पहुंचेंगे और दर्शन करके शाम तक वापस लौट आएंगे। इस फैसले ने बताया है कि संबंधों के बुरे दौर में भी सौहार्द बनाने वाले कुछेक कदमों के जरिए माहौल को मैत्रीपूर्ण बनाया जा सकता है।
- भारत ने यह स्टैंड ले लिया कि आतंकवाद और बातचीत साथ-साथ नहीं चल सकते। दूसरी तरफ पाकिस्तान ऐसा कोई कदम नहीं उठा सका जिससे यह लगे कि वहां आतंकवाद की नकेल कसी जा रही है। स्वाभाविक रूप से नए प्रधानमंत्री इमरान खान का बातचीत का प्रस्ताव कारगर नहीं साबित हुआ।
- गुरुवार को जब केंद्रीय मंत्रिमंडल ने पंजाब के करतारपुर कॉरिडोर पर अपनी इजाजत की मोहर लगाई, तो एकबारगी लगा था कि समझदारी लौटने लगी है। इसके एक दिन पहले ही पाकिस्तान ने भी इस कॉरिडोर का काम शुरू करने की घोषणा करके उम्मीद बंधा दी थी। पाकिस्तान के तमाम नेताओं और सेनाध्यक्ष ने इस मौके का फायदा उठाते हुए भारत से यह आग्रह तक कर डाला कि वह पाकिस्तान से शांति वार्ता अब शुरू कर ही दे।
- गुरु नानक देव के 550वें जयंती वर्ष में सिख तीर्थयात्रियों का एक जत्था इन दिनों पाकिस्तान गया हुआ है। जिस समय ये तीर्थयात्री गुरुद्वारा सच्चा सौदा में थे, उस दौरान भारतीय राजनयिक भी वहां गए। लेकिन उन्हें न सिर्फ गुरुद्वारे में प्रवेश करने से रोक दिया गया, बल्कि उनका अपमान भी किया गया।
- सिख गुरुद्वारों की एक विशेषता यह होती है कि वहां कोई भी किसी भी वक्त जा सकता है। कहीं भी किसी भी तरह की रोक-टोक नहीं होती। चाहे वह व्यक्ति किसी भी धर्म, संप्रदाय या जाति का हो। बस सिर ढकने की एक छोटी सी मर्यादा का ख्याल रखना होता है। पर किसी तरह की कोई रोक नहीं होती।
- गुरु नानक जयंती से ठीक एक दिन पहले करतारपुर कॉरिडोर को हरी झंडी दिखाकर केंद्रीय मंत्रिमंडल ने सिख संगत को एक अच्छा तोहफा दे दिया है। सिखों के पहले गुरु के जीवन में करतारपुर काफी महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम 18 साल यहीं गुजारे थे।
- इस लिहाज से यह सिखों का महत्वपूर्ण तीर्थ है। दिक्कत यह है कि करतारपुर भारतीय सीमा से चार किलोमीटर दूर पाकिस्तान के नरोवाल जिले में पड़ता है। लंबे समय से यह मांग की जा रही थी कि सिख तीर्थ यात्रियों के लिए एक कॉरिडोर बनाया जाए, जिससे वे बिना किसी वीजा या विशेष अनुमति के दर्शन के लिए वहां जा सकें।
- अभी तक सिख संगत को ये दर्शन गुरुदासपुर के डेरा बाबा नानक से दूरबीन के जरिए करने पड़ते थे। बीच में जो चार किलोमीटर का जंगल है, उसमें हाथी घास उग आती थी, जिसे विशेष अवसरों पर पाकिस्तानी सेना कटवा देती थी, ताकि दर्शन में कोई दिक्कत न आए।
- दोनों देशों के बीच कई बार सद्भावना के सेतु बने, मगर तनाव की हल्की सी दस्तक आते ही वे टूट गए। इसका अपवाद दिल्ली और लाहौर के बीच चलने वाली बस सेवा सदा-ए-सरहद और दोनों देशों के बीच चलने वाली ट्रेन समझौता एक्सप्रेस ही हैं, जो कई साल से अबाध चल रही हैं और जिनको कारगिल युद्ध के समय भी बंद नहीं होने दिया गया था।
- गुरुनानक जयंती से ठीक एक दिन पहले भारत सरकार ने फैसला किया कि पंजाब के गुरदासपुर जिले में डेरा बाबा नानक से भारत-पाक अंतरराष्ट्रीय सीमा तक एक गलियारा बनाया जाएगा, ताकि गुरद्वारा साहिब करतारपुर तक जाने का रास्ता बन सके।
- भारत के राष्ट्रपति और पंजाब के मुख्यमंत्री 26 नवंबर को इसकी नींव रखेंगे। ऐसी ही फुर्ती पाकिस्तान ने भी दिखाई है। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान भी 28 नवंबर को अपने यहां एक समारोह में गुरद्वारे से अंतरराष्ट्रीय सीमा तक गलियारा निर्माण का उद्घाटन करेंगे।
- करतारपुर साहिब तक श्रद्धालुओं को जाने देने का मामला करीब बीस साल से चला आ रहा था। 1999, 2004 फिर 2008 में भारत ने इस मुद्दे को पाकिस्तान के समक्ष उठाया था, लेकिन पाकिस्तानी हुकूमत की हठधर्मिता के कारण सारी कोशिशें बेकार गईं। हालांकि लंबे समय तक दोनों मुल्कों के बीच मौखिक तौर इस बारे में बातचीत चलती रही थी कि करतारपुर तक बिना पासपोर्ट-वीजा के श्रद्धालुओं को आने दिया जाए, लेकिन कोई फैसला नहीं हो पा रहा था।

करतारपुर साहिब

- सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक जी करतारपुर के इसी गुरुद्वारा दरबार साहिब के स्थान पर एक आश्रम में रहा करते थे। करतारपुर के गुरुद्वारा दरबार साहिब स्थान पर गुरु नानक जी ने 16 सालों तक अपना जीवन व्यतीत किया। बाद में इसी गुरुद्वारे की जगह पर गुरु नानक देव जी ने अपना देह छोड़ा था, जिसके बाद गुरुद्वारा दरबार साहिब बनवाया गया।

- मान्यता है कि जब नानक जी ने अपनी आखिरी सांस ली तो उनका शरीर अपने आप गायब हो गया और उस जगह कुछ फूल रह गए। इन फूलों में से आधे फूल भारतीय सिख (अब) ने अपने पास रखे और उन्होंने हिंदू रीति रिवाजों से इन्हीं से गुरु नानक जी का अंतिम संस्कार किया और करतारपुर के गुरुद्वारा दरबार साहिब में नानक जी की समाधि बनाई।
- वहीं, आधे फूलों को पाकिस्तान के पंजाब प्रांत (अब) के मुस्लिम भक्त अपने साथ ले गए और उन्होंने गुरुद्वारा दरबार साहिब के बाहर आंगन में मुस्लिम रीति रिवाज के मुताबिक कब्र बनाई।
- माना जाता है गुरु नानक जी ने इसी स्थान पर अपनी रचनाओं और उपदेशों को पन्नों पर लिख अगले गुरु यानी अपने शिष्य भाई लहना के हाथों सौंप दिया था। यही शिष्य बाद में गुरु अंगद देव नाम से जाने गए। इन्हीं पन्नों पर सभी गुरुओं की रचनाएं जुड़ती गई और दस गुरुओं के बाद इन्हीं पन्नों को गुरु ग्रन्थ साहिब नाम दिया गया, जिसे सिख धर्म का प्रमुख धर्मग्रंथ माना गया।
- करतारपुर स्थित गुरुद्वारा दरबार साहिब पाकिस्तान में रावी नदी के पार स्थित है जो भारत के डेरा बाबा नानक (Dera Baba Nanak) से करीब चार किलोमीटर दूरी है। आज भी सिख भक्त अपने पहले गुरु के इस गुरुद्वारे को डेरा बाबा नानक से दूरबीन की सहायता से देखते हैं। दूरबीन से गुरुद्वारा दरबार साहिब को देखने का काम CRPF की निगरानी में होता है।
- अगर यह गलियारा या कॉरिडोर बन जाता है तो भारतीय सिख गुरुद्वारा दरबार साहिब को बिना वीजा के देख सकते हैं। क्योंकि अभी तक करतारपुर स्थित इस गुरुद्वारे को देखने के लिए श्रद्धालुओं को वीजा की जरुरत पड़ती है।
- गुरुद्वारे की वर्तमान बिल्डिंग करीब 1,35,600 रुपए की लागत से तैयार हुई थी। इस रकम को पटियाल के महाराज सरदार भूपिंदर सिंह की ओर से दान में दिया गया था। बाद में साल 1995 में पाकिस्तान की सरकार ने इसकी मरम्मत कराई थी और साल 2004 में यह काम पूरा हो सका।
- हालांकि इसके करीब स्थित रावी नदी इसकी देखभाल में कई मुश्किलें भी पैदा करती है। साल 2000 में पाकिस्तान ने भारत से आने वाले सिख श्रद्धालुओं को बॉर्डर पर एक पुल बनाकर वीजा फ्री एंट्री देने का फैसला किया था। साल 2017 में भारत की संसदीस समिति ने कहा कि आपसी संबंध इतने बिगड़ चुके हैं कि किसी भी तरह का कॉरीडोर संभव नहीं है।

PT / Mains - प्रश्न

संभावित प्रश्न

1. करतारपुर साहिब का संबंध निम्नलिखित में से किस सिक्ख गुरू से है?
   (a) गुरू अर्जुनदेव
   (b) गुरू तेग बहादुर
   (c) गुरू नानक देव
   (d) गुरू अंगददेव

   (उत्तर-c)

2. करतारपुर साहिब कॉरिडोर निर्मित करने के लिए भारत ने किस देश के साथ पहल की है?
   (a) अफगानिस्तान (b) श्रीलंका
   (c) म्यांमार (d) पाकिस्तान

   (उत्तर-d)

3. करतारपुर साहिब कॉरिडोर के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों में विचार कीजिए-
   1. यह कारिडोर गुरदासपुर जिले के डेरा बाबा नानक स्थान से इंटरनेशनल बॉर्डर तक बनाया जायेगा।
   2. यह गुरूद्वारा, जिसे करतारपुर साहिब के नाम से जाना जाता है, पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त के नारोवाल जिले में स्थित है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-c)

4. करतारपुर गुरुद्वारा के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए?
   1. यह गुरूद्वारा उस स्थान पर बना है, जहाँ गुरू नानक की मृत्यु हुई थी।
   2. यह गुरूद्वारा रावी नदी के तट पर स्थित है।

   उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सत्य है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) केवल 2
   (c) 1 और 2 दोनों
   (d) न तो 1, न ही 2

   (उत्तर-c)

5. करतारपुर साहिब गलियारा खोलने से भारत-पाकिस्तान संबंधों पर किस प्रकार प्रभाव पड़ सकता है? स्पष्ट कीजिए।

पिछले वर्षों में पूछे गए प्रश्न

1. सिख गुरूओं से संबंधित निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए-
   1. बन्दा बहादुर को गुरू तेग बहादुर ने सिखों का सैन्य-प्रमुख नियुक्त किया।
   2. गुरू अर्जुन देव सिखों के गुरू, गुरू रामदास के पश्चात् बने।
   3. गुरू अर्जुन देव ने सिखों को उनकी अपनी लिपि-गुरूमुखी दी।

   उपरोक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?
   (a) केवल 1
   (b) 2 और 3
   (c) 1 और 3
   (d) 1 और 2

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2004, उत्तर-d)

2. निम्नलिखित मुस्लिम शासकों में किस एक को उसकी धर्म निरपेक्षता (secularism) में आस्था के कारण उसकी मुस्लिम प्रजा 'जगद्गुरू' पुकारती थी?
   (a) हुसैन शाह
   (b) जैन-उल-आबदीन
   (c) इब्राहिम आदिल शाह
   (d) महमूद द्वितीय

   (IAS प्रारंभिक परीक्षा, वर्ष-2000, उत्तर-c)

3. "बहुधार्मिक एवं बहुजातीय समाज के रूप में भारत की विविध प्रकृति, पड़ोस में दिख रहे अतिवाद के संघात के प्रति निरापद नहीं है।" ऐसे वातावरण के प्रतिकार के लिए अपनाई जाने वाली रणनीतियों के साथ विवेचना कीजिए।

   (IAS मुख्य परीक्षा, पेपर-3, वर्ष-2014)

GS World Committed To Excellence

MD.: Niraj Singh

ISO 9001:2015 Certified

IAS GS World PCS

Committed To Excellence

एक ऐसा संस्थान जो अपनी गुणवत्ता के लिए जाना जाता है...

सामान्य अध्ययन

नया फाउंडेशन बैच प्रारंभ

भूगोल

द्वारा

आलोक रंजन

निःशुल्क कार्यशाला

31st Jan.

6:30 P.M.

DELHI CENTRE

629, Ground Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09

011- 27658013, 7042772062, 7042772063

MD.: Niraj Singh

ISO 9001:2015 Certified

IAS GS World PCS

Committed To Excellence

एक ऐसा संस्थान जो अपनी गुणवत्ता के लिए जाना जाता है...

IAS Mains

Test-Series 2019

Total Test 30

Medium

हिन्दी / English

Online & Offline

Start On 3rd Feb.

Time : - 10:00 AM

UPPCS Mains

Test-Series 2018

Total Test 28

(12 Topic Wise, 8 Full Test, 4 Essay, 4 General Hindi)

Start On 3rd Feb.

Time : - 9:30 AM

DELHI CENTRE

629, Ground Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09

011- 27658013, 7042772062, 7042772063